1170

अनेकान्त

फरवरी, सन् १९४८

संस्थापक-प्रवर्तक
वीरसेवा-मन्दिर, सरसावा

सञ्चालक-व्यवस्थापक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

सम्पादक-मण्डल

जुगलकिशोर मुख्तार
प्रधान सम्पादक
मुनि कान्तिसागर
दरबारीलाल न्यायाचार्य
अयोध्याप्रसाद 'गोयलीय'
डालमियांनगर (बिहार)

वर्ष ९ किरण २

लेखोंपर पारितोषिक

'अनेकान्त' के इस पूरे वर्षमें प्रकाशित सर्वश्रे[ष्ठ] लेखोंपर डेढ़सौ १५०), सौ १००) और पचास ५०) का पारितोषिक दिया जायगा। इस पारि-तोषिक-स्पर्धामें सम्पादक, व्यवस्थापक और प्रकाशक नहीं रहेंगे। बाहरके विद्वानोंके लेखोंप[र] ही यह पारितोषिक दिया जायेगा। लेखोंकी जांच और तत्सम्बन्धी परितोषिकका निर्णय 'अनेकान्त' का सम्पादक-मण्डल करेगा।

—व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

१ समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने (युक्त्यनुशासन) —[प्र० सम्पादक ४५
२ संजय वेलट्ठिपुत्त और स्याद्वाद —[न्या० पं० दरबारीलाल कोठिया ५०
३ रत्नकरण्डके कर्तृत्व विषयमें मेरा विचार और निर्णय। —[प्र० सम्पादक ५६
४ साहित्य-परिचय और समालोचन ६० (घ)
५ विमल भाई [—अयोध्याप्रसाद गोयलीय ६१
६ हिन्दी-गौरव (कविता) —[पं० हरिप्रसाद अविकसित ६३
७ सोमनाथका मन्दिर —[बा० छोटेलाल जैन ६४
८ अद्भुत बन्धन (कविता)—[पं० अनूपचन्दजैन ७१
९ करनीका फल (कथा कहानी) — अयोध्याप्रसाद गोयलीय ७२
१० क्या सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तकालमें स्त्रीवेदी हो सकता है? —[बा० रतनचन्द जैन मुख्तार ७३
११ सलका भाग्योदय—[पं० के० भुजबली शास्त्री ७५
१२ चतुर्थ वाग्भट्ट और उनकी कृतियां —[पं० परमानन्द जैन शास्त्री ७६
१३ महात्मा गांधीके निधनपर शोक-प्रस्ताव ८१
१४ गांधीकी याद (कविता) —[मु० फ़जलुलरहमान जमाली ८२
१५ सम्पादकीय विचार-धारा —[गोयलीय ८३

श्री भारत जैन महामण्डलका २८ वां वार्षिक अधिवेशन ब्यावर (राजपूताना) में ता० २७, २८, २९ मार्च सन् १९४८ को श्रीमान् सेठ अमृतलालजी जैन सम्पादक 'जन्मभूमि' बम्बईके सभापतित्वमें होगा। इस अधिवेशनमें समाजके हितके कई प्रस्तावों पर विचार किया जावेगा। अतएव आपसे निवेदन है कि इस शुभ अवसरपर पधारनेकी कृपा करें, तथा समाजका हित किन किन बातोंमें है इसका लेख, तथा निबन्ध व प्रस्ताव वर्धा भेजें।

निवेदक—
चिरञ्जीलाल बड़जात्या
सहायकमन्त्री, श्री भारत जैन
महामण्डल, वर्धा

प्राचीन मूर्तियां—

अलवर शहरमें मोहोला जतीकी बगीचीमें (पूर्जैन विहारके समीप) एक महाजनके मकानकी नींव खुदते समय दक्षिणकी ओर जिधर कबरिस्तान है ता० १९-२-४८ की दस बजे सुबह चार मूर्तियां जमीनसे ४.५ फुटकी गहराईमें निकलीं। ये जैन प्रतिमा हैं और इनपर स्थानीय जैनसमाजने अपना अधिकार कर लिया है। इन चारों मूर्तियोंमेंसे ३ प्रतिमायें खण्डित हैं जिनमेंसे एकपर जो लेख है उससे प्रकट होता है कि वह भगवान पार्श्वनाथकी है और वह वीर सं० १३०२में प्रतिष्ठित की गई थी। शेष दो खंडित मूर्तियों पर कोई चिह्न नहीं है इसलिये उनके सम्बन्धमें निश्चितरूपसे कुछ नहीं कहा जासकता कि वे कबकी निर्माण की हुई हैं। चौथी प्रतिमा भगवान ऋषभदेवकी २ फुट ऊंची है। इसपर चिह्न स्पष्ट है। यह चौथे कालकी जान पड़ती है। संगमूसाकी बनी हुई है। यह विशाल होनेके अलावा बहुत सुन्दर अनुपम चित्ताकर्षक है। इसे देखनेको जैन तथा अजैन दर्शक सहस्रोंकी संख्यामें नित्यप्रति आरहे हैं ऐसा अनुमान है कि कबरिस्तानके नीचे कभी प्राचीन जैनमन्दिर था। खुदाईका काम जारी है।

स्थानीय जैनसमाजने अस्थाईरूपसे इन प्रतिमाओंको निकट ही विराजमान कर दिया है।

—जैनसमाज, अलवर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

वार्षिक मूल्य ४)

एक किरणका मूल्य ।।)

वर्ष ६ किरण २ | वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा, जि० सहारनपुर | फरवरी
माघ, वीरनिर्वाण-संवत् २४७३, विक्रम-संवत् २००४ | १९४८

समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने

युक्त्यनुशासन

मद्याङ्गवद्भूत-समागमे ज्ञः शक्त्यन्तर-व्यक्तिरदैव-सृष्टिः ।
इत्यात्म-शिश्नोदर-पुष्टि-तुष्टैर्निर्ह्री-भयैर्हा! मृदवः प्रलब्धाः ॥३५॥

'जिस प्रकार मद्याङ्गोंके—मद्यके अङ्गभूत पिष्टोदक. गुड, धातकी आदिके समागम (समुदाय) पर मदशक्तिकी उत्पत्ति अथवा आविर्भूति होती है उसी तरह भूतोंके—पृथ्वी. जल, अग्नि, वायु तत्त्वोंके—समागमपर चैतन्य उत्पन्न अथवा अभिव्यक्त होता है—वह कोई जुदा तत्व नहीं है, उन्हींका सुख-दुःख हर्ष-विषाद-विवर्त्तात्मक स्वाभाविक परिणामविशेष है। और यह सब शक्तिविशेषकी व्यक्ति है, कोई दैव-सृष्टि नहीं है। इस प्रकार यह जिनका—कार्यवादी अविद्धकर्णादि तथा अभिव्यक्तिवादी पुरन्दरादि चार्वाकोंका—सिद्धान्त है उन अपने शिश्न (लिङ्ग) तथा उदरकी पुष्टिमें ही सन्तुष्ट रहनेवाले निर्लज्जों तथा निर्भयोंके द्वारा हा! कोमल-बुद्धि—भोले मनुष्य—ठगे गये हैं!!'

व्याख्या—यहां स्तुतिकार स्वामी समन्तभद्रने उन चार्वाकोंकी प्रवृत्तिपर भारी खेद व्यक्त किया है जो अपने लिङ्ग तथा उदरकी पुष्टिमें ही सन्तुष्ट रहते हैं—उसीको सब कुछ समझते हैं; 'खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ' यह जिनका प्रमुख सिद्धान्त है; जो मांस खाने, मदिरा पीने तथा चाहे जिससे—माता, बहिन, पुत्रीसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी—कामसेवन (भोग) करनेमें कोई दोष नहीं देखते; जिनकी दृष्टिमें पुण्य-पाप और उनके कारण शुभ-अशुभ कर्म कोई चीज नहीं; जो परलोकको नहीं मानते, जीवको भी नहीं मानते और अपरिपक्वबुद्धि भोले जीवोंको यह कह कर ठगते हैं कि—'जाननेवाला जीव कोई जुदा पदार्थ नहीं है, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार मूल तत्त्व अथवा भूत पदार्थ हैं, इनके संयोगसे शरीर-इन्द्रिय तथा विषय-संज्ञाकी उत्पत्ति या अभिव्यक्ति होती है और इन शरीर-इन्द्रिय-विषयसंज्ञासे चैतन्य उत्पन्न अथवा अभिव्यक्त होता है। इस तरह चारों भूत चैतन्यका परम्परा कारण हैं और शरीर, इन्द्रिय तथा विषयसंज्ञा ये तीनों एक साथ उसके साक्षात् कारण हैं। यह चैतन्य गर्भसे मरण-पर्यन्त रहता है और उन पृथ्वी आदि चारों भूतोंका उसी प्रकार शक्ति-विशेष है जिस प्रकार कि मद्यके अङ्गरूप पदार्थों (आटा मिला जल, गुड और धातकी आदि) का शक्तिविशेष मद (नशा) है। और जिस प्रकार मदको उत्पन्न करनेवाले शक्तिविशेषकी व्यक्ति कोई दैवकृत-सृष्टि नहीं देखी जाती बल्कि मद्यके अङ्गभूत असाधारण और साधारण पदार्थोंका समागम होनेपर स्वभावसे ही वह होती है उसी प्रकार ज्ञानके हेतुभूत शक्तिविशेषकी व्यक्ति भी किसी दैवसृष्टिका परिणाम नहीं है बल्कि ज्ञानके कारण जो असाधारण और साधारण भूत (पदार्थ) हैं उनके समागमपर स्वभावसे ही होती है। अथवा हरीतकी (हरड़) आदिमें जिस प्रकार विरेचन (जुलाब) की शक्ति स्वाभाविकी है—किसी देवताको प्राप्त होकर हरीतकी विरेचन नहीं करती है—उसी प्रकार इन चारों भूतोंमें भी चैतन्यशक्ति स्वाभाविकी है। हरीतकी यदि कभी और किसीको विरेचन नहीं करती है तो उसका कारण या तो हरीतकी आदि योगके पुराना हो जानेके कारण उसकी शक्तिका जीर्ण-शीर्ण हो जाना होता है और या उपयोग करनेवालेकी शक्तिविशेषकी अप्रतीति उसका कारण होती है। यही बात चारों भूतोंका समागम होनेपर भी कभी और कहीं चैतन्यशक्तिकी अभिव्यक्ति न होनेके विषयमें समझना चाहिये। इस तरह जब चैतन्य कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं और चारों भूतोंकी शक्तिविशेषके रूपमें जिस चैतन्यकी अभिव्यक्ति होती है वह मरणपर्यन्त ही रहता है—शरीरके साथ उसकी भी समाप्ति हो जाती है—तब परलोकमें जानेवाला कोई नहीं बनता। परलोकीके अभावमें परलोकका भी अभाव ठहरता है, जिसके विषयमें नरकादिका भय दिखलाया जाता तथा स्वर्गादिकका प्रलोभन दिया जाता है। और दैव (भाग्य) का अभाव होनेसे पुण्य-पाप कर्म तथा उनके साधन शुभ-अशुभ अनुष्ठान कोई चीज नहीं रहते—सब व्यर्थ ठहरते हैं। और इस लिये लोक-परलोकके भय तथा लज्जाको छोड़कर यथेष्ट रूपमें प्रवर्तना चाहिये—जो जीमें आवे वह करना तथा खाना-पीना चाहिये। साथ ही, यह भी समझ लेना चाहिये कि 'तपश्चरण तो नाना प्रकारकी कोरी यातनाएँ हैं, संयम भोगोंका वञ्चक है और अग्निहोत्र तथा पूजादिक कर्म बच्चोंके खेल हैं *—इन सबमें कुछ भी नहीं धरा है।'

इस प्रकारके ठगवचनों-द्वारा जो लोग भोले जीवोंको ठगते हैं—पाप और लोकके भयको हृदयोंसे निकालकर तथा लोक-लाजको भी उठाकर उनकी पापमें निरंकुश प्रवृत्ति कराते हैं, ऐसे लोगोंको आचार्यमहोदयने जो 'निर्भय' और 'निर्लज्ज' कहा है वह ठीक ही है। ऐसे लोग विवेक-शून्य होकर स्वयं विषयोंमें अन्धे हुए दूसरोंको भी उन पापोंमें फँसाते हैं, उनका अधःपतन करते हैं और उसमें आनन्द मनाते हैं, जो कि एक बहुत ही निकृष्ट प्रवृत्ति है।

यहां भोले जीवोंके ठगाये जानेकी बात कहकर आचार्य-महोदयने प्रकारान्तरसे यह भी सूचित किया है कि जो प्रौढ बुद्धिके धारक विचारवान् मनुष्य हैं वे ऐसे ठग-वचनोंके द्वारा कभी ठगाये नहीं जा सकते। वे जानते हैं कि परमार्थसे जो अनादि निधन उपयोग लक्षण चैतन्य स्वरूप आत्मा है वह प्रमाण

* "तपांसि यातनाश्चित्राः संयमो भोगवञ्चकः। अग्निहोत्रादिकं कर्म बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से प्रसिद्ध है और पृथिव्यादि भूतोंके समागमपर चैतन्यका सर्वथा उत्पन्न अथवा अभिव्यक्त होना व्यवस्थापित नहीं किया जा सकता। क्योंकि शरीराकार-परिणत पृथिव्यादि भूतोंके सङ्गत, अविकल और अनुपहत वीर्य होनेपर भी जिस चैतन्यशक्तिके वे अभिव्यञ्जक कहे जाते हैं उसे या तो पहलेसे सत् कहना होगा या असत् अथवा उभयरूप। इन तीन विकल्पोंके सिवाय दूसरी कोई गति नहीं है। यदि अभिव्यक्त होनेवाली चैतन्यशक्तिको पहलेसे सत्रूप (विद्यमान) माना जायगा तो सर्वदा सत्रूप शक्तिकी ही अभिव्यक्ति सिद्ध होनेसे चैतन्यशक्तिके अनादित्व और अनन्तत्वकी सिद्धि ठहरेगी। और उसके लिये यह अनुमान सुघटित होगा 'कि— चैतन्यशक्ति कथंचित् नित्य है, क्योंकि वह सत्रूप और अकारण है, जैसे कि पृथिवी आदि भूतसामान्य।' इस अनुमानमें सदकारणत्व हेतु व्यभिचारादि दोषोंसे रहित होनेके कारण समीचीन है और इसलिये चैतन्यशक्तिको अनादि-अनन्त अथवा कथञ्चित् नित्य सिद्ध करनेमें समर्थ है।

यदि यह कहा जाय कि पिष्टोदकादि मद्यांगोंसे अभिव्यक्त होनेवाली मदशक्ति पहलेसे सत्रूप होते हुए भी नित्य नहीं मानी जाती और इसलिये उस सत् तथा अकारणरूप मदशक्तिके साथ हेतुका विरोध है, तो यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि वह मदशक्ति भी कथञ्चिन्नित्य है और उसका कारण यह है कि चेतनद्रव्यके ही मदशक्तिका स्वभावपना है, सर्वथा अचेतनद्रव्योंमें मदशक्तिका होना असम्भव है; इसीसे द्रव्यमन तथा द्रव्येन्द्रियोंके, जो कि अचेतन हैं, मदशक्ति नहीं बन सकती—भावमन और भावेन्द्रियोंके ही, जो कि चेतनात्मक हैं, मदशक्तिकी सम्भावना है। यदि अचेतनद्रव्य भी मदशक्तिको प्राप्त होवे तो मद्यके भाजनों अथवा शराब की बोतलोंको भी मद अर्थात् नशा होना चाहिये; और उनकी भी चेष्टा शराबियों जैसी होनी चाहिये; परन्तु ऐसा नहीं है। वस्तुतः चेतनद्रव्यमें मदशक्तिकी अभिव्यक्तिका बाह्य कारण मद्यादिक और अन्तरङ्ग कारण मोहनीय कर्मका उदय है—मोहनीयकर्मके उदय बिना बाह्यमें मद्यादिका संयोग होते हुए भी मदशक्तिकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। चूनांचे मुक्तात्माओंमें दोनों कारणोंका अभाव होनेसे मदशक्तिकी अभिव्यक्ति नहीं बनती। और इसलिये मदशक्तिके द्वारा उक्त सदकारणत्व हेतुमें व्यभिचार दोष घटित नहीं हो सकता, वह चैतन्यशक्तिका नित्यत्व सिद्ध करनेमें समर्थ है। चैतन्यशक्तिका नित्यत्व सिद्ध होनेपर परलोकी और परलोकादि सब सुघटित होते हैं। जो लोग परलोकीको नहीं मानते उन्हें यह नहीं कहना चाहिए कि 'पहलेसे सतरूपमें विद्यमान चैतन्यशक्ति अभिव्यक्त होती है।'

यदि यह कहा जाय कि अविद्यमान चैतन्यशक्ति अभिव्यक्त होती है तो यह प्रतीतिके विरुद्ध है, क्योंकि जो सर्वथा असत् हो ऐसी किसी भी चीजकी अभिव्यक्ति नहीं देखी जाती। और यदि यह कहा जाय कि कथञ्चित् सत्रूप तथा कथंचित् असत्रूप शक्ति ही अभिव्यक्त होती है तो इससे परमतकी—स्याद्वादकी—सिद्धि होती है, क्योंकि स्याद्वादियोंको उस चैतन्यशक्तिकी कायाकार-परिणत-पुद्गलोंके द्वारा अभिव्यक्ति अभीष्ट है जो द्रव्यदृष्टिसे सत्रूप होते हुए भी पर्यायदृष्टिसे असत् बनी हुई है। और इसलिये सर्वथा चैतन्यकी अभिव्यक्ति प्रमाण-बाधित है, जो उसका जैसे तैसे वंचक वचनोंद्वारा प्रतिपादन करते हैं उन चार्वाकोंके द्वारा सुकुमारबुद्धि मनुष्य निःसन्देह ठगाये जाते हैं।

इसके सिवाय जिन चार्वाकोंने चैतन्यशक्तिको भूतसमागमका कार्य माना है उनके यहां सर्व चैतन्य शक्तियोंमें अविशेषका प्रसङ्ग उपस्थित होता है—कोई प्रकारका विशेष न रहनेसे प्रत्येक प्राणीमें बुद्धि आदिकृत विशेष (भेद) नहीं बनता। और विशेष पाया जाता है अतः उनकी उक्त मान्यता मिथ्या है। इसी बातको अगली कारिकामें व्यक्त करते हुए आचार्य महोदय कहते हैं—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टेऽविशिष्टे जननादि-हेतौ विशिष्टता का प्रतिसत्त्वमेषाम् ।
स्वभावतः किं न परस्य सिद्धिरतावकानामपि हा! प्रपातः ॥३६॥

'जब जननादि हेतु— चैतन्यकी उत्पत्ति तथा अभिव्यक्तिका कारण पृथिवी आदि भूतोंका समुदाय अविशिष्ट देखा जाता है— उसमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती और दैवसृष्टि (भाग्यनिर्माणादि)को अस्वीकार किया जाता है— तब इन (चार्वाकों) के प्राणि प्राणिके प्रति क्या विशेषता बन सकती है? — कारणमें विशिष्टताके न होनेसे भूतसमागमकी और तज्जन्य अथवा तदभिव्यक्त चैतन्यकी कोई भी विशिष्टता नहीं बन सकती; तब इस दृश्यमान बुद्ध्यादि चैतन्यके विशेषको किस आधारपर सिद्ध किया जायगा? कोई भी आधार उसके लिये नहीं बनता।

(इसपर) यदि उस विशिष्टताकी सिद्धि स्वभावसे ही मानी जाय तो फिर चारों भूतोंसे भिन्न पाँचवें आत्मतत्वकी सिद्धि स्वभावसे क्यों नहीं मानी जाय?— उसमें क्या बाधा आती है और इसे न मान कर 'भूतोंका कार्य चैतन्य' माननेसे क्या नतीजा, जो किसी तरह भी सिद्ध नहीं हो सकता? क्योंकि यदि कायाकार-परिणत भूतोंका कार्य होनेसे चैतन्यकी स्वभावसे सिद्धि है तो यह प्रश्न पैदा होता है कि पृथ्वी आदि भूत उस चैतन्यके उपादान कारण हैं या सहकारी कारण? यदि उन्हें उपादान कारण माना जाय तो चैतन्य-के भूतान्वित होनेका प्रसंग आता है— अर्थात् जिस प्रकार सुवर्णके उपादान होनेपर मुकट, कुंडलादिक पर्यायोंमें सुवर्णका अन्वय (वंश)चलता है तथा पृथ्वी आदिके उपादान होनेपर शरीरमें पृथ्वी आदिका अन्वय चलता है उसी प्रकार भूतचतुष्टयके उपादान होनेपर चैतन्यमें भूतचतुष्टयका अन्वय चलना चाहिए— उन भूतोंका लक्षण उसमें पाया जाना चाहिये। क्योंकि उपादान द्रव्य वही कहलाता है जो त्यक्ताऽत्यक्त-आत्मरूप हो, पूर्वाऽपूर्वके साथ वर्तमान हो और त्रिकालवर्ती जिसका विषय हो ❋। परन्तु भूतसमुदाय ऐसा नहीं देखा जाता कि जो अपने पहले अचेतनाकारको त्याग करके चेतनाकारको ग्रहण करता हुआ भूतोंके धारण-ईरण-द्रव-उष्णतालक्षण स्वभावसे अन्वित (युक्त) हो। क्योंकि चैतन्य धारणादि भूतस्वभावसे रहित जाननेमें आता है और कोई भी पदार्थ अत्यन्त विजातीय कार्य करता हुआ प्रतीत नहीं होता। भूतोंका धार-णादि-स्वभाव और चैतन्य (जीव)का ज्ञान-दर्शनोपयोग-लक्षण दोनों एक दूसरेसे अत्यन्त विलक्षण एवं विजातीय हैं। अत: अचेतनात्मक भूतचतुष्टय अत्यन्त विजातीय चैतन्यका उपादान कारण नहीं बन सकता दोनोंमें उपादानोपादेयभाव संभव नहीं। और यदि भूतचतुष्टयको चैतन्यकी उत्पत्तिमें सहकारी कारण माना जाय तो फिर उपादान कारण कोई और बतलाना होगा; क्योंकि बिना उपादानके कोई भी कार्य संभव नहीं। जब दूसरा कोई उपादान कारण नहीं और उपादान तथा सहकारी कारणसे भिन्न तीसरा भी कोई कारण ऐसा नहीं जिससे भूतचतुष्टयको चैतन्यका जनक स्वीकार किया जा सके, तब चैतन्यकी स्वभावसे ही भूतविशेषकी तरह तत्त्वान्तरके रूपमें सिद्धि होती है। इस तत्वान्तर-सिद्धिको न माननेवाले जो अतावक हैं— दर्शनमोहके उदयसे आकुलित चित्त हुए आप वीर जिनेन्द्रके मतसे बाह्य हैं— उन (जीविकामात्र तन्त्र-विचारकों)का भी हाय! यह कैसा प्रपतन हुआ है, जो उन्हें संसार समुद्रके आवर्तमें गिराने वाला है!!'

स्वच्छन्दवृत्तेर्जगतः स्वभावादुच्चैरनाचार-पथेष्वदोषम् ।
निघुष्य दीक्षासममुक्तिमानास्त्वद्दृष्टि-बाह्या बत विभ्रमन्ते ॥३७॥

❋ १ "त्यक्ताऽत्यक्तात्मरूपं यत्पूर्वाऽपूर्वेण वर्तते। कालत्रयेऽपि तद्द्रव्यमुपादानमिति स्मृतम् ॥"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'स्वभावसे ही जगतकी स्वच्छन्द-वृत्ति--यथेच्छ प्रवृत्ति- है इसलिये जगतके ऊँचे दर्जेके अनाचार-मार्गोंमें— हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील (अब्रह्म) और परिग्रह नामके पाँच महापापोंमें— भी कोई दोष नहीं, ऐसी घोषणा करके— उनके अनुष्ठान जैसी सदोष प्रवृत्तिको निर्दोष बतलाकर— जो लोग दीक्षाके समकाल ही मुक्तिको मानकर अभिमानी हो रहे हैं —सहजग्राह्य हृदयमें मन्त्रविशेषारोपणके समय ही मुक्ति हो जाने (मुक्तिका सर्टिफिकेट मिल जाने)का जिन्हें अभिमान है— अथवा दीक्षाका निरास जैसे बने वैसे (दीक्षानुष्ठानका निवारण करनेकेलिये) मुक्तिको जो (मीमांसक) अमान्य कर रहे हैं और मांसभक्षण, मदिरापान तथा मैथुनसेवन जैसे अनाचारके मार्गोंके विषयमें स्वभावसे ही जगतकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको हेतु बताकर यह घोषणा कर रहे हैं कि उसमें कोई दोष नहीं है + वे सब (हे वीर जिन !) आपकी दृष्टिसे— बन्ध, मोक्ष और तत्कारण-निश्चयके निबन्धनस्वरूप आपके स्याद्वाददर्शनसे—बाह्य हैं और (सर्वथा एकान्तवादी होनेसे) केवल विभ्रममें पड़े हुए हैं— तत्त्वके निश्चयको प्राप्त नहीं होते— यह बड़े ही खेद अथवा कष्टका विषय है !!'

व्याख्या— इस कारिकामें 'दीक्षासममुक्तिमानाः' पद दो अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है । एक अर्थमें उन मान्त्रिकों (मन्त्रवादियों) का ग्रहण किया गया है जो मन्त्र-दीक्षाके समकाल ही अपनेको मुक्त हुआ समझकर अभिमानी बने रहते हैं, अपनी दीक्षाको यम-नियम रहिता होते हुए भी अनाचारकी क्षयकारिणी समर्थ-दीक्षा मानते हैं और इस लिए बड़ेसे बड़ा अनाचार—हिंसादिक घोर पाप— करते हुए भी उसमें कोई दोष नहीं देखते—कहते हैं 'स्वभावसे ही यथेच्छ प्रवृत्ति होनेके कारण बड़ेसे बड़े अनाचारके मार्ग भी दोषके कारण नहीं होते और इसलिये उन्हें उनका आचरण करते हुए भी प्रसिद्ध जीवन्मुक्तिकी तरह कोई दोष नहीं लगता।' दूसरे अर्थमें उन मीमांसकोंका ग्रहण किया गया है जो कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न अनन्तज्ञानादिरूप मुक्तिका होना नहीं मानते, यम-नियमादिरूप दीक्षा भी नहीं मानते और स्वभावसे ही जगतके भूतों (प्राणियों) की स्वच्छन्द-प्रवृत्ति बतलाकर मांसभक्षण, मदिरापान और यथेच्छ मैथुनसेवन—जैसे अनाचारोंमें कोई दोष नहीं देखते। साथ ही वेद-विहित पशुवधादि ऊँचे दर्जेके अनाचार मार्गोंको भी निर्दोष बतलाते हैं, जबकि वेद-बाह्य ब्रह्महत्यादिको निर्दोष न बतलाकर सदोष ही घोषित करते हैं। ऐसे सब लोग वीर-जिनेन्द्रकी दृष्टि अथवा उनके बतलाये हुए सन्मार्गसे बाह्य हैं, ठीक तत्त्वके निश्चयको प्राप्त न होनेके कारण सदोषको निर्दोष मानकर विभ्रममें पड़े हुए हैं और इसीलिये आचार्य महोदयने उनकी इन दूषित प्रवृत्तियोंपर खेद व्यक्त किया है और साथ ही यह सूचित किया है कि हिंसादिक महा अनाचारोंके जो मार्ग हैं वे सब सदोष हैं— उन्हें निर्दोष सिद्ध नहीं किया जा सकता, चाहे वे वेदादि किसी भी आगमविहित हों या अनागमविहित हों ।

+ १ "न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने ।"

सद्विचार मणियां

१ जो अपनेको जानता है वह सबको जानता। जो अपनेको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता । —कुन्द कुन्द

२ हमारी इच्छाएँ जितनी कम हों, उतने ही हम देवताओंके समान हैं। —सुकरात

३ यह भी हो सकता है कि गरीबी पुण्यका फल हो और अमीरी पापका । —म० गांधी

४ कुशाग्रबुद्धि महान् कार्योंको प्रारम्भ करती है; पर परिश्रम उन्हें पूरा करता है । —एमर्सन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजय वेलट्ठिपुत्त और स्याद्वाद

(लेखक—न्यायाचार्य पण्डित दरबारीलाल जैन, कोठिया)

जैन दर्शनके स्याद्वाद सिद्धान्तको कितने ही विद्वान् ठीक तरहसे समझनेका प्रयत्न नहीं करते और धर्मकीर्त्ति एवं शङ्कराचार्यकी तरह उसके बारेमें भ्रान्त उल्लेख अथवा कथन कर जाते हैं, यह बड़े ही खेदका विषय है। काशी हिन्दूविश्वविद्यालयमें संस्कृत-पाली विभागके प्रोफेसर पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्यने सन् १९४६ में 'बौद्ध-दर्शन' नामका एक ग्रन्थ हिन्दीमें लिखकर प्रकाशित किया है, जिसपर उन्हें इक्कीससौ रुपयेका डालमियां पुरस्कार भी मिला है। इसमें उन्होंने, बुद्धके समकालीन मत-प्रवर्तकोंके मतोंको देते हुए, संजय वेलट्ठिपुत्तके अनिश्चिततावाद मतको भी बौद्धोंके 'दीघनिकाय' (हिन्दी अ० पृ० २२) ग्रन्थसे उपस्थित किया है और अन्तमें यह निष्कर्ष निकाला है कि "यह अनेकान्तवाद प्रतीत होता है। सम्भवत: ऐसे ही आधारपर महावीरका स्याद्वाद प्रतिष्ठित किया गया था ❀।"

इसी प्रकार दर्शन और हिन्दीके ख्यातिप्राप्त बौद्ध विद्वान् राहुल सांकृत्यायन अपने 'दर्शन-दिग्दर्शन' में लिखते हैं +—

"आधुनिक जैन-दर्शनका आधार 'स्याद्वाद' है, जो मालूम होता है संजय वेलट्ठिपुत्तके चार अङ्गवाले अनेकान्तवादको (!) लेकर उसे सात अङ्गवाला किया गया है। संजयने तत्त्वों (=परलोक, देवता) के बारेमें कुछ भी निश्चयात्मक रूपसे कहनेसे इन्कार करते हुए उस इन्कारको चार प्रकार कहा है—

(१) है ?—नहीं कह सकता।
(२) नहीं है ?—नहीं कह सकता।
(३) है भी नहीं भी ?—नहीं कह सकता।
(४) न है और न नहीं है ?—नहीं कह सकता।

इसकी तुलना कीजिए जैनोंके सात प्रकारके स्याद्वादसे—

(१) है ?—हो सकता है (स्याद् अस्ति)
(२) नहीं है ?—नहीं भी हो सकता (स्यान्नास्ति)
(३) है भी नहीं भी ?—है भी और नहीं भी हो सकता है (स्यादस्ति च नास्ति च)

उक्त तीनों उत्तर क्या कहे जा सकते (=वक्तव्य) हैं ? इसका उत्तर जैन 'नहीं' में देते हैं—

(४) स्याद् (हो सकता है) क्या यह कहा जा सकता (=वक्तव्य) है ?—नहीं, स्याद् अ-वक्तव्य है।

(५) 'स्याद् अस्ति' क्या यह वक्तव्य है ? नहीं, 'स्याद् अस्ति' अवक्तव्य है।

(६) 'स्याद् नास्ति' क्या यह वक्तव्य है ? नहीं, 'स्याद् नास्ति' अवक्तव्य है।

(७) 'स्याद् अस्ति च नास्ति च' क्या यह वक्तव्य है ? नहीं, 'स्याद् अस्ति च नास्ति च' अ-वक्तव्य है'।

दोनोंके मिलानेसे मालूम होगा कि जैनोंने संजयके पहलेवाले तीन वाक्यों (प्रश्न और उत्तर दोनों) को अलग करके अपने स्याद्वादकी छै भङ्गियाँ बनाई हैं, और उसके चौथे वाक्य "न है और न नहीं है" को छोड़कर 'स्याद्' भी अवक्तव्य है यह सातवाँ भङ्ग तैयार कर अपनी सप्तभङ्गी पूरी की।

उपलभ्य सामग्रीसे मालूम होता है, कि संजय अनेकान्तवादका प्रयोग परलोक, देवता, कर्मफल,

❀ १ देखो, बौद्धदर्शन पृ० ४०।

+ २ देखो, दर्शनदिग्दर्शन पृ० ४९६-९७।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुक्तपुरुष जैसे — परोक्ष विषयोंपर करता था। जैन संजयकी युक्तिको प्रत्यक्ष वस्तुओंपर लागू करते हैं। उदाहरणार्थ सामने मौजूद घटकी सत्ताके बारेमें यदि जैन-दर्शनसे प्रश्न पूछा जाय, तो उत्तर निम्न प्रकार मिलेगा—

(१) घट यहां है ?—होसकता है (=स्यादस्ति)।

(२) घट यहां नहीं है ?— नहीं भी हो सकता है (स्याद् नास्ति)।

(३) क्या घट यहां है भी और नहीं भी है ? — है भी और नहीं भी हो सकता है (=स्याद् अस्ति च नास्ति च)।

(४) 'हो सकता है' (=स्याद्) क्या यह कहा जा सकता है ?—नहीं, 'स्याद्' यह अ-वक्तव्य है।

(५) घट यहां 'हो सकता है' (=स्यादस्ति) क्या यह कहा जा सकता है ?—नहीं, 'घट यहां हो सकता है' यह नहीं कहा जा सकता।

(६) घट यहां 'नहीं हो सकता है' (स्याद् नास्ति) क्या यह कहा जा सकता है ?—नहीं, 'घट यहां नहीं हो सकता' यह नहीं कहा जा सकता।

(७) घट यहां 'हो भी सकता है', नहीं भी हो सकता है', क्या यह कहा जा सकता है ? नहीं, 'घट यहां हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है' यह नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार एक भी सिद्धान्त (=वाद)की स्थापना न करना, जो कि संजयका वाद था, उसीको संजयके अनुयायियोंके लुप्त हो जानेपर जैनोंने अपना लिया, और उसकी चतुर्भंगी न्यायको सप्तभङ्गीमें परिणत कर दिया।"

मालूम होता है कि इन विद्वानोंने जैनदर्शनके स्याद्वाद-सिद्धान्तको निष्पक्ष होकर समझनेका प्रयत्न नहीं किया और अपनी परम्परासे जो जानकारी उन्हें मिली उसीके आधारपर उन्होंने उक्त कथन किया है। अच्छा होता, यदि वे किसी जैन विद्वान् अथवा दार्शनिक जैन ग्रन्थसे जैनदर्शनके स्याद्वादको समझकर उसपर कुछ लिखते। हमें आश्चर्य है कि दर्शनों और उनके इतिहासका अपनेको अधिकारी विद्वान् माननेवाला राहुलजी जैसा महापण्डित जैनदर्शन और उसके इतिहासको छिपाकर यह कैसे लिख गया कि "संजयके वादको ही संजयके अनुयायियोंके लुप्त हो जानेपर जैनोंने अपना लिया।" क्या वे यह मानते हैं कि जैनधर्म व जैनदर्शन और उनके माननेवाले जैन संजयके पहले नहीं थे ? यदि नहीं, तो उनका उक्त लिखना असम्बद्ध और भ्रान्त है। और यदि मानते हैं, तो उनकी यह बड़ी भारी ऐतिहासिक भूल है, जिसे स्वीकार करके उन्हें तुरन्त ही अपनी भूलका परिमार्जन करना चाहिये। यह अब सर्व विदित होगया है और प्राय: सभी निष्पक्ष ऐतिहासिक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानोंने स्वीकार भी कर लिया है कि जैन-धर्म व जैनदर्शनके प्रवर्त्तक भगवान् महावीर ही नहीं थे, अपितु उनसे पूर्व हो गये ऋषभदेव आदि २३ तीर्थङ्कर उनके प्रवर्त्तक हैं, जो विभिन्न समयोंमें हुए हैं और जिनमें पहले तीर्थङ्कर ऋषभदेव, २२ वें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमि (कृष्णके समकालीन और उनके चचेरे-भाई) तथा २३ वें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ तो ऐतिहासिक महापुरुष भी सिद्ध हो चुके हैं। अत: भगवान महावीरके समकालीन संजय और उसके अनुयायियोंके पूर्व जैनधर्म व जैनदर्शन और उनके माननेवाले जैन विद्यमान थे, और इसलिये उनके द्वारा संजयके वादको अपनानेका राहुलजीका आक्षेप सर्वथा निराधार और असंगत है। ऐसा ही एक भारी आक्षेप अपने बौद्ध ग्रन्थकारोंकी प्रशंसाकी धुनमें वे समग्र भारतीय विद्वानोंपर भी कर गये, जो अक्षम्य है। वे इसी 'दर्शन दिग्दर्शन' (पृष्ठ ४९८) में लिखते हैं—

"नागार्जुन, असंग, वसुबन्धु, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति,— भारतके अप्रतिम दार्शनिक इसी धारामें पैदा हुए थे। उन्हींके ही उच्छिष्ट-भोजी पीछेके प्राय: सारे ही दूसरे भारतीय दार्शनिक दिखलाई पड़ते हैं।"

राहुलजी जैसे कलमशूरोंको हरेक बातको और प्रत्येक पदवाक्यादिको नाप-जोख कर ही कहना और लिखना चाहिए।

अब सञ्जयका वाद क्या है और जैनोंका स्याद्वाद

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

क्या है ? तथा उक्त विद्वानोंका उक्त कथन क्या संगत एवं अभ्रान्त है ? इन बातोंपर संक्षेपमें प्रस्तुत लेखमें विचार किया जाता है।

संजय वेलट्ठिपुत्तका वाद (मत)—

भगवान महावीरके समकालमें अनेक मत-प्रवर्तक विद्यमान थे। उनमें निम्न छह मत-प्रवर्तक बहुत प्रसिद्ध और लोकमान्य थे—

१ अजितकेश कम्बल, २ मक्खलि गोशाल, ३ पूरण काश्यप, ४ प्रकुध कात्यायन, ५ संजय वेलट्ठिपुत्त, और ६ गौतम बुद्ध।

इनमें अजितकेश कम्बल और मक्खलि गोशाल भौतिकवादी, पूरण काश्यप और प्रकुध कात्यायन नित्यतावादी, सञ्जय वेलट्ठिपुत्त अनिश्चिततावादी और गौतम बुद्ध क्षणिक अनात्मवादी थे।

प्रकृतमें हमें सञ्जयके मतको जानना है। अतः उनके मतको नीचे दिया जाता है। 'दीघनिकाय' में उनका मत इस प्रकार बतलाया है—

"यदि आप पूछें,— 'क्या परलोक है', तो यदि मैं समझता होऊँ कि परलोक है तो आपको बतलाऊँ कि परलोक है। मैं ऐसा भी नही कहता वैसा भी नहीं कहता, दूसरी तरहसे भी नहीं कहता। मैं यह भी नहीं कहता कि 'वह नहीं है'। मैं यह भी नहीं कहता कि 'वह नहीं नहीं है। परलोक नहीं है, परलोक नहीं नहीं।' देवता (=औपपादिक प्राणी) हैं...। देवता नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं और न नहीं हैं।...... अच्छे बुरे कर्मके फल हैं, नहीं हैं, हैं भी और नहीं भी, न हैं और न नहीं है। तथागत (=मुक्तपुरुष) मरनेके बाद होते हैं, नहीं होते हैं...... ?—यदि मुझसे ऐसा पूछें, तो मैं यदि ऐसा समझता होऊँ...... तो ऐसा आपको कहूं। मैं ऐसा भी नहीं कहता, वैसा भी नहीं कहता......।"

यह बौद्धोंद्वारा उल्लेखित संजयका मत है। इसमें पाठक देखेंगे कि संजय परलोक, देवता, कर्मफल और मुक्तपुरुष इन अतीन्द्रिय पदार्थोंके जाननेमें असमर्थ था और इसलिये उनके अस्तित्वादिके बारेमें वह कोई निश्चय नहीं कर सका। जब भी कोई इन पदार्थोंके बारेमें उससे प्रश्न करता था तब वह चतुष्कोटि विकल्पद्वारा यही कहता था कि 'मैं जानता होऊँ तो बतलाऊँ और इसलिये निश्चयसे कुछ भी नहीं कह सकता।' अतः यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि संजय अनिश्चिततावादी अथवा संशयवादी था और उसका मत अनिश्चिततावाद या संशयवादरूप था। राहुलजीने स्वयं भी लिखा है + कि "संजयका दर्शन जिस रूपमें हम तक पहुंचा है उससे तो उसके दर्शनका अभिप्राय है, मानवको सहजबुद्धिको भ्रममें डाला जाये, और वह कुछ निश्चय न कर भ्रान्त धारणाओंको अप्रत्यक्ष रूपसे पुष्ट करे।"

जैनदर्शनका स्याद्वाद और अनेकान्तवाद—

परन्तु जैनदर्शनका स्याद्वाद संजयके उक्त अनिश्चिततावाद अथवा संशयवादसे एकदम भिन्न और निर्णय-कोटिको लिये हुए है। दोनोंमें पूर्व-पश्चिम अथवा ३६ के अंको जैसा अन्तर है। जहां संजयका वाद अनिश्चयात्मक है वहां जैनदर्शनका स्याद्वाद निश्चयात्मक है। वह मानवकी सहज बुद्धिको भ्रममें नहीं डालता. बल्कि उसमें आभासित अथवा उपस्थित विरोधों व सन्देहोंको दूर कर वस्तु-तत्त्वका निर्णय करानेमें सक्षम होता है स्मरण रहे कि समग्र (प्रत्यक्ष और परोक्ष) वस्तु-तत्त्व अनेकधर्मात्मक है— उसमें अनेक (नाना) अन्त (धर्म-शक्ति-स्वभाव) पाये जाते हैं और इसलिये उसे अनेकान्तात्मक भी कहा जाता है। वस्तुतत्त्वकी यह अनेकान्तात्मकता निसर्गतः है, अप्राकृतिक नहीं। यही वस्तुमें अनेक धर्मोंका स्वीकार व प्रतिपादन जैनोंका अनेकान्तवाद है। संजयके वादको, जो अनिश्चिततावाद अथवा संशयवादके नामसे उल्लिखित होता है, अनेकान्तवाद कहना अथवा बतलाना किसी तरह भी उचित एवं सङ्गत नहीं है, क्योंकि संजयके वादमें एक भी सिद्धांत की स्थापना नहीं है; जैसाकि उसके उपरोक्त मत-प्रदर्शन और राहुलजीके पूर्वोक्त कथनसे स्पष्ट है। किन्तु अनेकान्तवादमें अस्तित्वादि सभी धर्मोंकी स्थापना

+ १ देखो, 'दर्शन-दिग्दर्शन' पृ० ४९२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और निश्चय है। जिस जिस अपेक्षासे वे धर्म उसमें व्यवस्थित एवं निश्चित हैं उन सबका निरूपक स्याद्वाद है। अनेकान्तवाद व्यवस्थाप्य है तो स्याद्वाद उसका व्यवस्थापक है। दूसरे शब्दोंमें अनेकान्तवाद वस्तु (वाच्य-प्रमेय) रूप है और स्याद्वाद निर्णायक वाचक-तत्त्वरूप है। वास्तवमें अनेकान्तात्मक वस्तु-तत्त्वको ठीकठीक समझने-समझाने, प्रतिपादन करने-करानेके लिये ही स्याद्वादका आविष्कार किया गया है, जिसके प्ररूपक जैनोंके सभी (२४) तीर्थंकर हैं। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीरको उसका प्ररूपण उत्तराधिकारके रूपमें २३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथसे तथा भगवान पार्श्वनाथको कृष्णके समकालीन २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमिसे मिला था। इस तरह पूर्व पूर्व तीर्थंकरसे अग्रिम तीर्थंकरको परम्परया स्याद्वादका प्ररूपण प्राप्त हुआ था। इस युगके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं जो इस युगके आद्य स्याद्वाद-प्ररूपक हैं। महान् जैन तार्किक समन्तभद्र + और अकलङ्कदेव ÷ जैसे प्रख्यात जैनाचार्योंने सभी तीर्थंकरों को स्पष्टतः स्याद्वादी—स्याद्वादप्रतिपादक बतलाया है और उस रूपसे उनका गुण-कीर्तन किया है। जैनोंकी यह अत्यन्त प्रामाणिक मान्यता है कि उनके हर एक तीर्थंकरका उपदेश 'स्याद्वादामृतगर्भ' होता है और वे 'स्याद्वादपुण्योदधि' होते हैं। अतः केवल भगवान महावीर ही स्याद्वादके प्रतिष्ठापक व प्रतिपादक नहीं हैं। स्याद्वाद जैनधर्मका मौलिक सिद्धान्त है और वह भगवान महावीरके पूर्ववर्ती ऐतिहासिक एवं *प्रागैतिहासिक* कालसे समागत है।

स्याद्वादका अर्थ और प्रयोग—

'स्याद्वाद' पद स्यात् और वाद इन दो शब्दोंसे बना है। 'स्यात्' अव्यय निपातशब्द है, क्रिया अथवा अन्य शब्द नहीं, जिसका अर्थ है कथञ्चित्, किञ्चित्, किसी अपेक्षा, कोई एकदृष्टि, कोई एक धर्मकी विवक्षा-कोई एक ओर। और 'वाद' शब्दका अर्थ है मान्यता अथवा कथन। जो स्यात् (कथञ्चित्) का कथन करनेवाला अथवा 'स्यात्' को लेकर प्रतिपादन करनेवाला है वह स्याद्वाद है। अर्थात् जो सर्वथा एकान्तका त्यागकर अपेक्षासे वस्तुस्वरूपका विधान करता है वह स्याद्वाद है। कथञ्चिद्वाद, अपेक्षावाद आदि इसीके दूसरे नाम हैं—इन नामोंसे भी उसीका बोध होता है। जैन तार्किकशिरोमणि स्वामी समन्तभद्रने आप्तमीमांसा और स्वयम्भूस्तोत्रमें यही कहा है—

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः।
सप्तभङ्गनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥१०४॥

—आप्तमीमांसा

सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीहिते ॥
सर्वथानियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ॥

—स्वयम्भूस्तोत्र

अतः 'स्यात्' शब्दको संशयार्थक, भ्रमाथक अथवा अनिश्चयात्मक नहीं समझना चाहिये। वह अविवक्षित धर्मोंकी गौणता और विवक्षित धर्मकी प्रधानता-को सूचित करता हुआ विवक्षित हो रहे धर्मका विधान एवं निश्चय करानेवाला है। संजयके अनिश्चितता-वादकी तरह वह अनिर्णीति अथवा वस्तुतत्त्वकी सर्वथा अवाच्यताकी घोषणा नहीं करता। उसके द्वारा जैसा प्रतिपादन होता है वह समन्तभद्रके शब्दोंमें निम्न प्रकार है—

कथञ्चित्ते सदेवेष्टं कथञ्चिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सवथा ॥१४॥
सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥१५॥
क्रमार्पितद्वयाद् द्वैतं, सहावाच्यमशक्तितः।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भङ्गाः स्वहेतुतः ॥१६॥

अर्थात् जैनदर्शनमें समग्र वस्तुतत्त्व कथञ्चित् सत् ही है, कथंचित् असत् ही है तथा कथंचित् उभय

+ 'बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः। स्याद्वादिनो नाथ तवैव युक्तं नैकान्तदृष्टेस्त्वमतोऽसि शास्ता ॥१४॥" स्वयंभूस्तोत्रगत शंभवजिनस्तोत्र।

÷ २ "धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमो नमः। वृषभादिमहावीरान्तेभ्यः स्वात्मोपलब्धये ॥१॥" लघीयस्त्रय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही है और कथंचित् अवाच्य ही है, सो यह सब नय-विवक्षासे है, सर्वथा नहीं।

स्वरूपादि (स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव इन) चारसे उसे कौन सत् ही नहीं मानेगा और पररूपादि (परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव इन) चारसे कौन असत् ही नहीं मानेगा। यदि इस तरह उसे स्वीकार न किया जाय तो उसकी व्यवस्था नहीं हो सकती।

क्रमसे अर्पित दोनों (सत् और असत्) की अपेक्षासे वह कथंचित् उभय ही है, एक साथ दोनों (सत् और असत्) को कह न सकनेसे अवाच्य ही है। इसी प्रकार अवक्तव्यके बादके अन्य तीन भङ्ग (सदवाच्य, असदवाच्य, और सदसदवाच्य) भी अपनी विवक्षाओंसे समझ लेना चाहिए।

यही जैनदर्शनका सप्तभङ्गी न्याय है जो विरोधी-अविरोधी धर्मयुगलको लेकर प्रयुक्त किया जाता है और तत्तत् अपेक्षाओंसे वस्तु-धर्मोंका निरूपण करता है। स्याद्वाद एक विजयी योद्धा है और सप्तभङ्गी-न्याय उसका अस्त्र-शस्त्रादि विजय-साधन है। अथवा यों कहिए कि वह एक स्वतः सिद्ध न्यायाधीश है और सप्तभंगी उसके निर्णयका कए साधन है। जैनदर्शन-के इन स्याद्वाद, सप्तभङ्गीन्याय, अनेकान्तवाद आदिका विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन आप्तमीमांसा, स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, सन्मतिसूत्र, अष्टशती, अष्टसहस्री, अनेकान्तजयपताका, स्याद्वादमञ्जरी आदि जैन दार्शनिक ग्रन्थोंमें समुपलब्ध है।

संजयके अनिश्चिततावाद और जैनदर्शनके स्याद्वादमें अन्तर—

ऊपर राहुलजीने संजयकी चतुर्भङ्गी इस प्रकार बतलाई है—

(१) है?—नहीं कह सकता।

(२) नहीं है?—नहीं कह सकता।

(३) है भी नहीं भी?—नहीं कह सकता।

(४) न है और न नहीं है?—नहीं कह सकता।

संजयने सभी परोक्ष वस्तुओंके बारेमें 'नहीं कह सकता' जवाब दिया है और इसलिये उसे अनिश्चिततावादी कहा गया है।

जैनोंकी जो सप्तभङ्गी है वह इस प्रकार है—

(१) वस्तु है?—कथञ्चित् (अपनी द्रव्यादि चार अपेक्षाओंसे) वस्तु है ही—स्यादस्त्येव घटादि वस्तु।

(२) वस्तु नहीं है?—कथञ्चित् (परद्रव्यादि चार अपेक्षाओंसे) वस्तु नहीं ही है—स्यान्नास्त्येव घटादि वस्तु।

(३) वस्तु है, नहीं (उभय) है?—कथञ्चित् (क्रमसे अर्पित दोनों—स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि चार अपेक्षाओंसे) वस्तु है, नहीं (उभय) ही है—स्यादस्ति नास्त्येव घटादि वस्तु।

(४) वस्तु अवक्तव्य है?—कथञ्चित् (एक साथ विवक्षित स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि दोनों अपेक्षाओंसे कही न जा सकनेसे) वस्तु अवक्तव्य ही है—स्यादवक्तव्यमेव घटादि वस्तु।

(५) वस्तु 'है-अवक्तव्य है'?—कथञ्चित् (स्वद्रव्यादिसे और एक साथ विवक्षित दोनों स्व-पर-द्रव्यादिकी अपेक्षाओंसे कही न जा सकनेसे) वस्तु 'है-अवक्तव्य ही है'—स्यादस्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु।

(६) वस्तु 'नहीं-अवक्तव्य है'?—कथञ्चित् (परद्रव्यादिसे और एक साथ विवक्षित दोनों स्व-पर द्रव्यादिकी अपेक्षासे कही न जा सकनेसे) वस्तु 'नहीं-अवक्तव्य ही है'—स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु।

(७) वस्तु 'है-नहीं-अवक्तव्य है'?—कथञ्चित् (क्रमसे अर्पित स्व-पर द्रव्यदिसे और एक साथ अर्पित स्व-परद्रव्यादिकी अपेक्षासे कही न जा सकनेसे) वस्तु 'है नहीं और अवक्तव्य ही है'—स्यादस्ति नास्त्यवक्तव्यमेव घटादि वस्तु।

जैनोंकी इस सप्तभङ्गीमें पहला, दूसरा और चौथा ये तीन भङ्ग तो मौलिक हैं और तीसरा, पाँचवाँ, और छठा द्विसंयोगी तथा सातवाँ त्रिसंयोगी भङ्ग हैं और इस तरह अन्य चार भङ्ग मूलभूत तीन भङ्गोंके संयोगज भङ्ग हैं। जैसे नमक, मिर्च और खटाई इन तीनके संयोगज स्वाद चार ही बन सकते हैं—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमक-मिर्च, नमक-खटाई, मिर्च-खटाई और नमक-मिर्च-खटाई—इनसे ज्यादा या कम नहीं। इन संयोगी चार स्वादोंमें मूल तीन स्वादोंको और मिला देनेसे कुल स्वाद सात ही बनते हैं। यही सप्तभङ्गोंकी बात है। वस्तुमें यों तो अनन्तधर्म हैं. परन्तु प्रत्येक धर्मको लेकर विधि-निषेधकी अपेक्षासे सात ही धर्म व्यवस्थित हैं—सत्वधर्म, असत्वधर्म, सत्वासत्वोभय, अवक्तव्यत्व, सत्वावक्तव्यत्व, असत्वावक्तव्यत्व और सत्वासत्वावक्तव्यत्व। इन सातसे न कम हैं और न ज्यादा। अत एव शङ्काकारोंको सात ही प्रकारके सन्देह, सात ही प्रकारकी जिज्ञासाएँ, सात ही प्रकारके प्रश्न होते हैं और इसलिये उनके उत्तर वाक्य सात ही होते हैं, जिन्हें सप्तभङ्ग या सप्तभङ्गीके नामसे कहा जाता है। इस तरह जैनोंकी सप्तभङ्गी उपपत्तिपूर्ण ढङ्गसे सुव्यवस्थित और सुनिश्चित है। पर संजयकी उपर्युक्त चतुर्भङ्गीमें कोई भी उपपत्ति नहीं है। उसने चारों प्रश्नोंका जवाब 'नहीं कह सकता' में ही दिया है और जिसका कोई भी हेतु उपस्थित नहीं किया, और इसलिये वह उनके विषयमें अनिश्चित है।

राहुलजीने जो ऊपर जैनोंकी सप्तभङ्गी दिखाई है वह भ्रमपूर्ण है। हम पहले कह आये हैं कि जैनदर्शनमें 'स्याद्वाद'के अन्तर्गत 'स्यात्' शब्दका अर्थ 'हो सकता है' ऐसा सन्देह अथवा भ्रमरूप नहीं है उसका तो कथञ्चित् (किसी एक अपेक्षासे) अर्थ है जो निर्णयरूप है। उदाहरणार्थ देवदत्तको लीजिये, वह पिता-पुत्रादि अनेक धर्मरूप है। यदि जैनदर्शनसे यह प्रश्न किया जाय कि क्या देवदत्त पिता है ? तो जैनदर्शन स्याद्वाद द्वारा निम्न प्रकार उत्तर देगा —

(१) देवदत्त पिता है—अपने पुत्रकी अपेक्षासे—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति'।

(२) देवदत्त पिता नहीं है— अपने पिता-मामा आदिकी अपेक्षासे—क्योंकि उनकी अपेक्षासे तो वह पुत्र, भानजा आदि है—'स्यात् देवदत्तः पिता नास्ति'।

(३) देवदत्त पिता है और नहीं है— अपने पुत्रकी अपेक्षा और अपने पिता-मामा आदिकी अपेक्षासे—'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति च नास्ति च'।

(४) देवदत्त अवक्तव्य है— एक साथ पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे— 'स्यात् देवदत्तः अवक्तव्यः'।

(५) देवदत्त पिता 'है- अवक्तव्य है'— अपने पुत्रकी अपेक्षा तथा एक साथ पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे— 'स्यात् देवदत्तः पिता अस्त्यवक्तव्यः'।

(६) देवदत्त 'पिता नहीं है-अवक्तव्य है'— अपने पिता-मामा आदिकी अपेक्षा और एक साथ पिता पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे— 'स्यात् देवदत्तः नास्त्यवक्तव्यः'।

(७) 'देवदत्त पिता' है और नहीं है तथा अवक्तव्य है'— क्रमसे विवक्षित पिता-पुत्रादि दोनोंकी अपेक्षासे और एक साथ विवक्षित पिता-पुत्रादि दोनों अपेक्षाओंसे कहा न जा सकनेसे— 'स्यात् देवदत्तः पिता अस्ति नास्ति चावक्तव्यः'।

यह ध्यान रहे कि जैनदर्शनमें प्रत्येक वाक्यमें उसके द्वारा प्रतिपाद्य धर्मका निश्चय करानेके लिये 'एव' कारका विधान अभिहित है जिसका प्रयोग नयविशारदोंके लिये यथेच्छ है—वे करें चाहे न करें। न करने पर भी उसका अध्यवसाय वे कर लेते हैं। राहुलजी जब 'स्यात्' शब्दके मूलार्थके समझनेमें ही भारी भूल करगये तब स्याद्वादकी भंगियोंके मेल-जोल करनेमें भूलें कर ही सकते थे और उसीका परिणाम है कि जैनदर्शनके सप्तभंगोंका प्रदर्शन उन्होंने ठीक तरह नहीं किया। हमें आशा है कि वे तथा स्याद्वाद-के सम्बन्धमें भ्रान्त अन्य विद्वान् भी जैनदर्शनके स्याद्वाद और सप्तभंगीको ठीक तरहसे ही समझने और उल्लेख करनेका प्रयत्न करेंगे।

यदि संजयके दर्शन और चतुर्भंगीको ही जैन दर्शनमें अपनाया गया होता तो जैनदार्शनिक उसके दर्शनका कदापि आलोचन न करते। अष्टशती और अष्टसहस्रीमें अकलंकदेव तथा विद्यानन्दने इस दर्शनकी जैसी कुछ कड़ी आलोचना करके उसमें दोषों-का प्रदर्शन किया है वह देखते ही बनता है। यथा—

'तहेयस्तीति न भणामि, नास्तीति च न भणामि.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदपि च भणामि तदपि न भणामीति दर्शनमस्त्विति कश्चित्, सोपि पापीयान्। तथा हि सद्भावेतराभ्यामनभिलापे वस्तुनः, केवलं मूकत्वं जगतः स्यात्, विधिप्रतिषेधव्यवहारायोगात्। न हि सर्वात्मनानभिलाप्यस्वभावं बुद्धिरध्यवस्यति। न चानध्यवसेयं प्रमितं नाम, गृहीतस्यापि तादृशस्यागृहीतकल्पत्वात्। मूर्च्छाचैतन्यवदिति।"— अष्टस० पृ० १२६।

इससे यह साफ है कि संजयकी सदोष चतुर्भंगी और दर्शनको जैनदर्शनने नहीं अपनाया। उसके अपने स्याद्वादसिद्धान्त, अनेकान्तसिद्धान्त, सप्तभङ्गी सिद्धान्त संजयसे बहुतपहलेसे प्रचलित हैं जैसे उसके अहिंसा-सिद्धान्त, अपरिग्रह-सिद्धान्त, कर्म-सिद्धान्त आदि सिद्धान्त प्रचलित हैं और जिनकेआद्यप्रवर्त्तक इस युगके तीथंकर ऋषभदेव हैं और अंतिम महावीर हैं। विश्वासहै उक्त विद्वान् अपनी जैनदर्शन व स्याद्वादके बारेमें हुई भ्रान्तियोंका परिमार्जन करेंगे और उसकी घोषणा कर देंगे।

२१ फरवरी १६४८] वीरसेवा मन्दिर, सरसावा

रत्नकरण्डके कर्तृत्व-विषयमें मेरा विचार और निर्णय

[सम्पादकीय]

(गतकिरणसे आगे)

(१) रत्नकरण्डको आप्तमीमांसाकार स्वामी समन्तभद्रकी कृति न बतलानेमें प्रोफेसर साहबकी जो सबसे बड़ी दलील है वह यह है कि 'रत्नकरण्डके 'क्षुत्पिपासा' नामक पद्यमें दोषका जो स्वरूप समझाया गया है वह आप्तमीमांसाकारके अभिप्रायानुसार हो ही नहीं सकता—अर्थात् आप्तमीमांसाकारका दोषके स्वरूप-विषयमें जो अभिमत है वह रत्नकरण्डके उक्त पद्यमें वर्णित दोष-स्वरूपके साथ मेल नहीं खाता-विरुद्ध पड़ता है, और इसलिये दोनों ग्रन्थ एक ही आचार्यकी कृति नहीं हो सकते'। इस दलीलको चरितार्थ करनेके लिये सबसे पहले यह मालूम होनेकी जरूरत है कि आप्तमीमांसाकारका दोषके स्वरूपविषयमें क्या अभिमत अथवा अभिप्राय है और उसे प्रोफेसर साहबने कहांसे अवगत किया है?—मूल आप्तमीमांसापरसे? आप्तमीमांसाकी टीकाओंपरसे? अथवा आप्तमीमांसाकारके दूसरे ग्रन्थोंपरसे? और उसके बाद यह देखना होगा कि रत्नकरण्डके 'क्षुत्पिपासा' नामक पद्यके साथ मेल खाता अथवा सङ्गत बैठता है या कि नहीं।

प्रोफेसर साहबने आप्तमीमांसाकारके द्वारा अभिमत दोषके स्वरूपका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया—अपने अभिप्रायानुसार उसका केवल कुछ संकेत ही किया है। उसका प्रधान कारण यह मालूम होता है कि मूल आप्तमीमांसामें कहीं भी दोषका कोई स्वरूप दिया हुआ नहीं है। 'दोष' शब्दका प्रयोग कुल पांच कारिकाओं नं० ४ ६ ५६, ६२, ८० में हुआ है जिनमेंसे पिछली तीन कारिकाओंमें बुद्ध्यसंचरदोष, वृत्तिदोष और प्रतिज्ञा तथा हेतुदोषका क्रमशः उल्लेख है, आप्तदोषसे सम्बन्ध रखनेवाली केवल ४थी तथा ६ठी कारिका ही है। और वे दोनों ही 'दोष'के स्वरूप कथनसे रिक्त हैं। और इसलिये दोषका अभिमत स्वरूप जाननेके लिये आप्तमीमांसाकी टीकाओं तथा आप्तमीमांसाकारकी दूसरी कृतियोंका आश्रय लेना होगा। साथ ही ग्रन्थके सन्दर्भ अथवा पूर्वापर कथन सम्बन्धको भी देखना होगा।

टीकाओंका विचार—

प्रोफेसर साहबने ग्रन्थसन्दर्भके साथ टीकाओंका आश्रय लेते हुए, अष्टसहस्रीटीकाके आधारपर, जिस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में अकलङ्कदेवकी अष्टशती टीका भी शामिल है, यह प्रतिपादित किया है कि 'दोषावरणयोर्हानिः' इस चतुर्थ-कारिका-गत वाक्य और 'स त्वमेवासि निर्दोषः' इस छठी कारिकागत वाक्यमें प्रयुक्त 'दोष' शब्दका अभिप्राय उन अज्ञान तथा राग-द्वेषादिक ❀ वृत्तियों से है जो ज्ञानावरणादि घातिया कर्मोंसे उत्पन्न होती हैं और केवलीमें उनका अभाव होनेपर नष्ट हो जाती हैं +। इस दृष्टिसे रत्नकरण्डके उक्त छठे पद्यमें उल्लेखित भय, स्मय, राग, द्वेष और मोह ये पाँच दोष तो आपको असङ्गत अथवा विरुद्ध मालूम नहीं पड़ते; शेष क्षुधा, पिपासा, जरा, आतङ्क(रोग), जन्म और अन्तक (मरण) इन छह दोषोंको आप असंगत समझते हैं— उन्हें सर्वथा असातावेदनीयादि अघातिया कर्मजन्य मानते हैं और उनका आप्त केवलीमें अभाव बतलानेपर अघातिया कर्मोंका सत्त्व तथा उदय बर्तमान रहनेके कारण सैद्धान्तिक कठिनाई महसूस करते हैं ÷। परन्तु अष्टसहस्रीमें ही द्वितीय कारिकाके अन्तर्गत 'विग्रहादिमहोदयः' पदका जो अर्थ 'शश्वन्निस्स्वेदत्वादिः' किया है और उसे 'घातिक्षयजः' बतलाया है उसपर प्रो० साहबने पूरी तौरपर ध्यान दिया मालूम नहीं होता। 'शश्वन्निःस्वेदत्वादिः' पदमें उन ३४ अतिशयों तथा ८ प्रातिहार्योंका समावेश है जो श्रीपूज्यपादके 'नित्यं निःस्वेदत्वं' इस भक्तिपाठ-गत अर्हत्स्तोत्रमें वर्णित हैं। इन अतिशयोंमें अर्हत्-स्वयम्भूकी देह-सम्बन्धी जो १० अतिशय हैं उन्हें देखते हुए जरा और रोगके लिये कोई स्थान नहीं रहता और भोजन तथा उपसर्गके अभावरूप (भुक्त्युपसर्गाभावः) जो दो अतिशय हैं उनकी उपस्थितिमें क्षुधा और पिपासाके लिये कोई अवकाश नहीं मिलता। शेष 'जन्म' का अभिप्राय पुनर्जन्मसे और 'मरण' का अभिप्राय अपमृत्यु अथवा उस मरणसे है जिसके अनन्तर दूसरा भव (संसारपर्याय) धारण किया जाता है। घातिया कर्मके क्षय हो जानेपर इन दोनोंकी सम्भावना भी नष्ट होजाती है। इस तरह घातिया कर्मोंके क्षय होनेपर क्षुत्पिपासादि शेष छहों दोषोंका अभाव होना भी अष्टसहस्री-सम्मत है, ऐसा समझना चाहिये। वसुनन्दि-वृत्तिमें तो दूसरी कारिकाका अर्थ देते हुए, "क्षुत्पिपासाजरारुजाऽपमृत्य्वाद्यभावः इत्यर्थः" इस वाक्यके द्वारा क्षुधा-पिपासादिके अभावको साफ तौर पर विग्रहादिमहोदयके अन्तर्गत किया है, विग्रहादि-महोदयको अमानुषातिशय लिखा है तथा अतिशयको पूर्वावस्थाका अतिरेक बतलाया है। और छठी कारिकामें प्रयुक्त हुए 'निर्दोष' शब्दके अर्थमें अविद्या-रागादिके साथ क्षुधादिके अभावको भी सूचित किया है। यथा:—

"निर्दोष अविद्यारागादिविरहितः क्षुदादिविरहितो वा अनन्तज्ञानादिसम्बन्धेन इत्यर्थः।"

इस वाक्यमें 'अनन्तज्ञानादि-सम्बन्धेन' पद 'क्षुदादिविरहितः' पदके साथ अपनी खास विशेषता एवं महत्त्व रखता है और इस बातको सूचित करता है कि जब आत्मामें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यकी आविर्भूति होती है तब उसके सम्बन्धसे क्षुधादि दोषोंका स्वतः अभाव हो जाता है अर्थात् उनका अभाव हो जाना उसका आनुषङ्गिक फल है—उसके लिये वेदनीय कर्मका अभाव-जैसे किसी दूसरे साधनके जुटने-जुटानेकी जरूरत नहीं रहती। और यह ठीक ही है; क्योंकि मोहनीयकर्मके साहचर्य अथवा सहायके विना वेदनीयकर्म अपना कार्य करनेमें उसी तरह असमर्थ होता है जिस तरह ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुआ ज्ञान वीर्यान्तरायकर्मका अनुकूल क्षयोपशम साथमें न होनेसे अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं होता; अथवा चारों घातिया कर्मोंका अभाव हो जानेपर वेदनीयकर्म अपना दुःखोत्पादनादि कार्य करनेमें उसीप्रकार असमर्थ होता है जिस प्रकार कि मिट्टी और पानी आदिके विना बीज अपना अंकुरोत्पादन कार्य करनेमें असमर्थ होता है। मोहादिकके अभावमें वेदनीयकी

❀ "दोषास्तावदज्ञान-राग-द्वेषादय उक्ताः"। (अष्टसहस्री का० ६, पृ० ६२)

\+ अनेकान्त वर्ष ७, कि० ७-८, पृ० ६२

÷ अनेकान्त वर्ष ७, कि० ३-४, पृ० ३१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति जीवित शरीर–जैसी न रहकर मृत शरीर–जैसी हो जाती है, उसमें प्राण नहीं रहता अथवा जली रस्सीके समान अपना कार्य करनेकी शक्ति नहीं रहती। इस विषयके समर्थनमें कितने ही शास्त्रीय प्रमाण आप्तस्वरूप, सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवार्तिक, श्लोकवार्तिक, आदिपुराण और जयधवला–जैसे ग्रन्थोंपरसे पण्डित दरबारीलालजीके लेखोंमें उद्धृत किये गये हैं❀ जिन्हें यहां फिरसे उपस्थित करनेकी जरूरत मालूम नहीं होती। ऐसी स्थितिमें क्षुत्पिपासा–जैसे दोषोंको सर्वथा वेदनीय-जन्य नहीं कहा जा सकता—वेदनीयकर्म उन्हें उत्पन्न करनेमें सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। और कोई भी कार्य किसी एक ही कारणसे उत्पन्न नहीं हुआ करता, उपादान कारणके साथ अनेक सहकारी कारणोंकी भी उसके लिये जरूरत हुआ करती है, उन सबका संयोग यदि नहीं मिलता तो कार्य भी नहीं हुआ करता। और इसलिये केवलीमें क्षुधादिका अभाव माननेपर कोई भी सैद्धान्तिक कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। वेदनीयका सत्त्व और उदय वर्तमान रहते हुए भी, आत्मामें अनन्तज्ञान–सुख–वीर्यादिका सम्बन्ध स्थापित होनेसे वेदनीयकर्मका पुद्गल-परमाणु-पुञ्ज क्षुधादि दोषोंको उत्पन्न करनेमें उसी तरह असमर्थ होता है जिस तरह कि कोई विषद्रव्य, जिसकी मारण शक्तिको मन्त्र तथा औषधादिके बलपर क्षीण कर दिया गया हो, मारनेका कार्य करनेमें असमर्थ होता है। निःसत्व हुए विषद्रव्यके परमाणुओंको जिस प्रकार विषद्रव्यके ही परमाणु कहा जाता है उसी प्रकार निःसत्व हुए वेदनीयकर्मके परमाणुओंको भी वेदनीयकर्मके ही परमाणु कहा जाता है, और इस दृष्टिसे ही आगममें उनके उदयादिककी व्यवस्था की गई है। उसमें कोई प्रकारकी बाधा अथवा सैद्धान्तिक कठिनाई नहीं होती– और इस लिये प्रोफेसर साहबका यह कहना कि 'क्षुधादि दोषोंका अभाव माननेपर केवलीमें अघातियाकर्मोंके भी नाशका प्रसङ्ग आता है'[1] उसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं है जिस प्रकार कि धूमके अभावमें अग्निका भी अभाव बतलाना अथवा किसी औषध प्रयोगमें विषद्रव्यकी मारणशक्तिके प्रभावहीन हो जानेपर विषद्रव्यके परमाणुओंका ही अभाव प्रतिपादन करना। प्रत्युत इसके, घातिया कर्मोंका अभाव होनेपर भी यदि वेदनीयकर्मके उदयादिवश केवलीमें क्षुधादिकी वेदनाओंको और उनके निरसनार्थ भोजनादिके ग्रहणकी प्रवृत्तियोंको माना जाता है तो उससे कितनी ही दुर्निवार सैद्धान्तिक कठिनाइयां एवं बाधाएँ उपस्थित होती हैं, जिनमेंसे दो तीन नमूनेके तौर पर इस प्रकार हैं:—

(क) यदि असातावेदनीयके उदय वश केवलीको भूख-प्यासकी वेदनाएँ सताती हैं, जो कि संक्लेश परिणामकी अविनाभाविनी हैं ❀, तो केवलीमें अनंत सुखका होना बाधित ठहरता है। और उस दुःखको न सह सकनेके कारण जब भोजन ग्रहण किया जाता है तो अनन्तवीर्य भी बाधित हो जाता है—उसका कोई मूल्य नहीं रहता—अथवा वीर्यान्तरायकर्मका अभाव उसके विरुद्ध पड़ता है।

(ख) यदि क्षुधादि वेदनाओंके उदय-वश केवलीमें भोजनादिकी इच्छा उत्पन्न होती है तो केवलीके मोहकर्मका अभाव हुआ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि इच्छा मोहका परिणाम है। और मोहके सद्भावमें केवलित्व भी नहीं बनता। दोनों परस्पर विरुद्ध हैं।

(ग) भोजनादिकी इच्छा उत्पन्न होनेपर केवलीमें नित्य ज्ञानोपयोग नहीं बनता, और नित्यज्ञानोपयोगके न बन सकनेपर उसका ज्ञान छद्मस्थों (असर्वज्ञों) के समान क्षायोपशमिक ठहरता है—क्षायिक नहीं। और तब ज्ञानावरण तथा उसके साथी दर्शनावरण नामके घातियाकर्मोंका अभाव भी नहीं बनता।

(घ) वेदनीयकर्मके उदयजन्य जो सुख–दुःख होता है वह सब इन्द्रियजन्य होता है और केवलीके इन्द्रियज्ञानकी प्रवृत्ति रहती नहीं। यदि केवलीमें क्षुधा–तृषादिकी वेदनाएँ मानी जाएँगी तो इन्द्रिय–

❀ अनेकान्त वर्ष ८ किरण ४-५ पृ० १५६-१६१

[1] अनेकान्त वर्ष ७ किरण ७-८ पृ० ६२

❀ संकिलेसाविणाभावणीए भुक्खाए दज्झमाणस्स (धवला)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानकी प्रवृत्ति होकर केवलज्ञानका विरोध उपस्थित होगा; क्योंकि केवलज्ञान और मतिज्ञानादिक युगपत् नहीं होते।

(ङ) क्षुधादिकी पीडाके वश भोजनादिकी प्रवृत्ति यथाख्यातचारित्रकी विरोधिनी है। भोजनके समय मुनिको प्रमत्त (छठा) गुणस्थान होता है और केवली भगवान १३ वें गुणस्थानवर्ती होते हैं जिससे फिर छठेमें लौटना नहीं बनता। इससे यथाख्यातचारित्र को प्राप्त केवलीभगवानके भोजनका होना उनकी चर्या और पदस्थके विरुद्ध पड़ता है।

इस तरह क्षुधादिकी वेदनाएँ और उनकी प्रतिक्रिया माननेपर केवलीमें घातियाकर्मोंका अभाव ही घटित नहीं हो सकेगा, जो कि एक बहुत बड़ी सैद्धान्तिक बाधा होगी। इसीसे क्षुधादिके अभावको 'घातिकर्मक्षयजः' तथा 'अनन्तज्ञानादिसम्बन्धजन्य' बतलाया गया है, जिसके माननेपर कोईभी सैद्धान्तिक बाधा नहीं रहती। और इसलिये टीकाओंपरसे क्षुधादिका उन दोषोंके रूपमें निर्दिष्ट तथा फलित होना सिद्ध है जिनका केवली भगवानमें अभाव होता है। ऐसी स्थितिमें रत्नकरण्डके उक्त छठेपद्यको क्षुत्पिपासादि दोषोंकी दृष्टिसे भी आप्तमीमांसाके साथ असंगत अथवा विरुद्ध नहीं कहा जा सकता।

ग्रन्थके सन्दर्भकी जांच—

अब देखना यह है कि क्या ग्रन्थका सन्दर्भ स्वयं इसके कुछ विरुद्ध पड़ता है? जहां तक मैंने ग्रन्थके सन्दर्भकी जांच की है और उसके पूर्वाऽपर कथन-संबन्धको मिलाया है मुझे उसमें कहीं भी ऐसी कोई बात नहीं मिली जिसके आधारपर केवलीमें क्षुत्पिपासादिके सद्भावको स्वामी समन्तभद्रकी मान्यता कहा जा सके। प्रत्युत इसके, ग्रन्थकी प्रारम्भिक दो कारिकाओंमें जिन अतिशयोंका देवागम-नभोयान-चामरादि विभूतियोंके तथा अन्तर्बाह्य-विग्रहादि-महोदयोंके रूपमें उल्लेख एवं संकेत किया गया है और जिनमें घातिक्षय-जन्य होनेसे क्षुत्पिपासादिके अभावका भी समावेश है उनके विषयमें एक भी शब्द ग्रन्थमें ऐसा नहीं पाया जाता जिससे ग्रन्थकारकी दृष्टिमें उन अतिशयोंका केवली भगवानमें होना अमान्य समझा जाय। ग्रन्थकार महोदयने '<u>मायाविष्वपि दृश्यन्ते</u>' तथा '<u>दिव्यः सत्यः दिवौकस्स्वप्यस्ति</u>' इन वाक्योंमें प्रयुक्त हुए 'अपि' शब्दके द्वारा इस बातको स्पष्ट घोषित कर दिया है कि वे अर्हत्केवलीमें उन विभूतियों तथा विग्रहादि महोदयरूप अतिशयोंका सद्भाव मानते हैं परन्तु इतनेसे ही वे उन्हें महान् (पूज्य) नहीं समझते; क्योंकि ये अतिशय अन्यत्र मायावियों (इन्द्रजालियों) तथा रागादि-युक्त देवोंमें भी पाये जाते हैं— भले ही उनमें वे वास्तविक अथवा उस सत्यरूपमें न हों जिसमें कि वे क्षीणकषाय अर्हत्केवलीमें पाये जाते हैं। और इसलिये उनकी मान्यताका आधार केवल आगमाश्रित श्रद्धा ही नहीं है बल्कि एक दूसरा प्रबल आधार वह गुणज्ञता अथवा परीक्षाकी कसौटी है जिसे लेकर उन्होंने कितने ही आप्तोंकी जांच की है और फिर उस परीक्षाके फलस्वरूप वे वीर जिनेन्द्रके प्रति यह कहनेमें समर्थ हुए हैं कि 'वह निर्दोष आप्त आप ही हैं'। (स त्वमेवासि निर्दोषः)। साथ ही 'युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्' इस पदके द्वारा उस कसौटी को भी व्यक्त कर दिया है जिसके द्वारा उन्होंने आप्तों के वीतरागता और सर्वज्ञता-जैसे असाधारण गुणोंकी परीक्षा की है, जिनके कारण उनके वचन युक्ति और शास्त्रसे अविरोधरूप यथार्थ होते हैं, और आगे संक्षेप में परीक्षाकी तफ़सील भी दे दी है। इस परीक्षामें जिनके आगम-वचन युक्ति-शास्त्रसे अविरोधरूप नहीं पाये गये उन सर्वथा एकान्तवादियोंको आप्त न मान कर 'आप्ताभिमानदग्ध' घोषित किया है। इस तरह निर्दोष वचन-प्रणयनके साथ सर्वज्ञता और वीतरागता-जैसे गुणोंको आप्तका लक्षण प्रतिपादित किया है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आप्तमें दूसरे गुण नहीं होते, गुण तो बहुत होते हैं किन्तु वे लक्षणात्मक अथवा इन तीन गुणोंकी तरह खास तौरसे व्यावर्तात्मक नहीं; और इसलिये आप्तके लक्षणमें वे भले ही ग्राह्य न हों परन्तु आप्तके स्वरूप-चिन्तनमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन्हें अग्राह्य नहीं कहा जासकता। लक्षण और स्वरूपमें बड़ा अन्तर है— लक्षण-निर्देशमें जहां कुछ असाधारण गुणोंको ही ग्रहण किया जाता है वहां स्वरूपके निर्देश अथवा चिन्तनमें अशेष गुणोंके लिये गुञ्जाइश रहती है। अत: अष्टसहस्रीकारने 'विग्रहादिमहोदय:' का जो अर्थ 'शश्वन्निस्वेदत्वादि:' किया है और जिसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है उस पर टिप्पणी करतेहुए प्रो० सा०ने जो यह लिखा है कि "शरीर-सम्बन्धी गुण धर्मोंका प्रकट होना न-होना आप्तके स्वरूप-चिन्तनमें कोई महत्व नहीं रखते" ❀ यह ठीक नहीं है। क्योंकि स्वयं स्वामी समन्तभद्रने अपने स्वयम्भूस्तोत्रमें ऐसे दूसरे कितने ही गुणोंका चिन्तन किया है जिनमें शरीर-सम्बन्धी गुण-धर्मोंके साथ अन्य अतिशय भी आगये हैं +। और इससे यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी समन्तभद्र अतिशयोंको मानते थे और उनके स्मरण-चिन्तनको महत्व भी देते थे।

ऐसी हालतमें आप्तमीमांसा ग्रन्थके सन्दर्भकी दृष्टिसे भी आप्तमें क्षुत्पिपासादिकके अभावको विरुद्ध नहीं कहा जा सकता और तब रत्नकरण्डका उक्त छठा पद्य भी विरुद्ध नहीं ठहरता। हां, प्रोफेसर साहब ने आप्तमीमांसाकी ९३वीं गाथाको विरोधमें उपस्थित किया है, जो निम्न प्रकार है:—

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दु:खात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्तत: ॥९३॥

इस कारिकाके सम्बन्धमें प्रो० सा०का कहना है कि 'इसमें वीतराग सर्वज्ञके दु:खकी वेदना स्वीकार की गई है जो कि कर्मसिद्धान्तकी व्यवस्थाके अनुकूल है; जब कि रत्नकरण्डके उक्त छठे पद्यमें क्षुत्पिपासादिकका अभाव बतलाकर दु:खकी वेदना अस्वीकार की गई है जिसकी संगति कर्मसिद्धान्तकी उन व्यवस्थाओंके साथ नहीं बैठती जिनके अनुसार केवलीके भी वेदनीयकर्म-जन्य वेदनाएँ होती हैं, और इसलिये रत्नकरण्डका उक्त पद्य इस कारिकाके सर्वथा विरुद्ध पड़ता है— दोनों ग्रन्थोंका एक कर्तृत्व स्वीकार करनेमें यह विरोध बाधक है' +। जहां तक मैंने इस कारिकाके अर्थपर उसके पूर्वापर सम्बन्धकी दृष्टिसे और दोनों विद्वानोंके ऊहापोहको ध्यानमें लेकर विचार किया है, मुझे इसमें सर्वज्ञका कहीं कोई उल्लेख मालूम नहीं होता। प्रो० साहबका जो यह कहना है कि 'कारिकागत 'वीतराग:' और 'विद्वान्' पद दोनों एक ही मुनि-व्यक्तिके वाचक हैं और वह व्यक्ति 'सर्वज्ञ' है, जिसका द्योतक विद्वान् पद साथमें लगा है' ÷ वह ठीक नहीं है। क्योंकि पूर्वकारिकामें ❀ जिस प्रकार अचेतन और अकषाय (वीतराग) ऐसे दो अबन्धक व्यक्तियोंमें बन्धका प्रसङ्ग उपस्थित

❀ अनेकान्त वर्ष ७, किरण ७-८, पृ० ६२

+ इस विषयके सूचक कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

(क) शरीररश्मिप्रसर: प्रभोस्ते बालार्करश्मिच्छविरालिलेप २८। यस्याङ्गलक्ष्मीपरिवेषभिन्नं तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नं, ननाश बाह्यं ··············· ३७। समन्ततोऽङ्गभासां ते परिवेषेण भूयसा, तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मं ध्यानतेजसा ६५। यस्य च मूर्ति: कनकमयीव स्वस्फुरदाभाकृतपरिवेषा १०७। शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं सुरभितरं विरजो निजं वपु:। तव शिवमतिविस्मयं यते यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम् ११३।

(ख) नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारै:, पादाम्बुजै: पातितमारदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै २९। प्रातिहार्यविभवै: परिष्कृतो देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ७३। मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यत: ७५। पूज्ये मुहु: प्राञ्जलिदेवचक्रम् ७९। सर्वज्ञज्योतिषोद्भूतस्तावको महिमोदय: कं न कुर्यात्प्रणम्रं ते सत्वं नाथ सचेतनम् ९६। तव वागमृतं श्रीमत्सर्वभाषास्वभावकं प्रीणयत्यमृतं यद्वत्प्राणिनो व्यापि संसदि ९७। भूरपि रम्या प्रतिपदमासीज्जातविकोशाम्बुजमृदुहासा १०८।

+ अनेकान्त वर्ष ८, किरण ३, पृ० १३२ तथा वर्ष ९, कि० १, पृ० ९

÷ अनेकान्त वर्ष ७, कि० ३-४, पृ० ३४

❀ पापं ध्रुवं परे दु:खात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाऽकषायौ च बध्येयातां निमित्तत: ॥९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करके परमें दु:ख-सुखके उत्पादनका निमित्तमात्र होनेसे पाप-पुण्यके बन्धकी एकान्त मान्यताको सदोष सूचित किया है उसी प्रकार इस कारिकामें भी वीतराग मुनि और विद्वान् ऐसे दो अबन्धक व्यक्तियोंमें बन्धका प्रसङ्ग उपस्थित करके स्व (निज) में दु:ख-सुखके उत्पादनका निमित्तमात्र होनेसे पुण्य-पापके बन्धकी एकान्त मान्यताको सदोष बतलाया है; जैसा कि अष्टसहस्रीकार श्रीविद्यानन्दआचार्यके निम्न टीका-वाक्य से भी प्रकट है—

"स्वस्मिन् दु:खोत्पादनात् पुण्यं सुखोत्पादनात्तु पापमिति यदीष्यते तदा वीतरागो विद्वांश्च मुनिस्ताभ्यां पुण्यपापाभ्यामात्मानं युञ्ज्यान्निमित्तसद्भावात्, वीतरागस्य कायक्लेशादिरूपदु:खोत्पत्तेर्विदुषस्तत्वज्ञानसन्तोषलक्षणसुखोत्पत्तेस्तन्निमित्तत्वात ।"

इसमें वीतरागके कायक्लेशादिरूप दु:खकी उत्पत्तिको और विद्वान्के तत्त्वज्ञान-सन्तोष लक्षण सुखकी उत्पत्तिको अलग अलग बतलाकर दोनों (वीतराग और विद्वान्) के व्यक्तित्वको साफ तौरपर अलग घोषित कर दिया है। और इसलिये वीतरागका अभिप्राय यहां उस छद्मस्थ वीतरागी मुनिसे है जो राग द्वेषकी निवृत्तिरूप सम्यक् चारित्रके अनुष्ठानमें तत्पर होता है— केवलीसे नहीं—और अपनी उस चारित्र-परिणतिके द्वारा बन्धको प्राप्त नहीं होता। और विद्वानका अभिप्राय उस सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा❋ से है जो तत्वज्ञानके अभ्यास-द्वारा सन्तोष-सुखका अनुभव करता है और अपनी उस सम्यग्ज्ञान-परिणतिके निमित्तसे बन्धको प्राप्त नहीं होता। वह अन्तरात्मा मुनि भी हो सकता और गृहस्थ भी; परन्तु परमात्मस्वरूप सर्वज्ञ अथवा आप्त नहीं ❋।

अत: इस कारिकामें जब केवली आप्त या सर्वज्ञका कोई उल्लेख न होकर दूसरे दो सचेतन प्राणियोंका उल्लेख है तब रत्नकरण्डके उक्त छठे पद्यके साथ इस कारिकाका सर्वथा विरोध कैसे घटित किया जा सकता है? नहीं किया जा सकता—खासकर उस हालतमें जब कि मोहादिकका अभाव और अनन्तज्ञानादिकका सद्भाव होनेसे केवलीमें दु:खादिककी वेदनाएँ वस्तुत: बनती ही नहीं और जिसका ऊपर कितना ही स्पष्टीकरण किया जा चुका है। मोहनीयादि कर्मोंके अभावमें साता-असाता वेदनीय-जन्य सुख दु:खकी स्थिति उस छायाके समान औपचारिक होती है—वास्तविक नहीं—जो दूसरे प्रकाशके सामने आते ही विलुप्त हो जाती है और अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं होती। और इसलिये प्रोफेसर साहबका यह लिखना कि "यथार्थत: वेदनीयकर्म अपनी फलदायिनी शक्तिमें अन्य अघातिया कर्मोंके समान सर्वथा स्वतन्त्र है" समुचित नहीं है। वस्तुत: अघातिया क्या, कोई भी कर्म अप्रतिहतरूपसे अपनी स्थिति तथा अनुभागादिके अनुरूप फलदान कार्यकरनेमें सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। किसी भी कर्मके लिये अनेक कारणोंकी जरुरत पड़ती है और अनेक निमित्तोंको पाकर कर्मोंमें संक्रमण-व्यतिक्रमणादि कार्य हुआ करता है, समयसे पहले उनकी निर्जरा भी होजाती है और तपश्चरणादिके बलपर उनकी शक्तिको बदला भी जा सकता है। अत: कर्मोंको सर्वथा स्वतन्त्र कहना एकान्त है मिथ्यात्व है और मुक्तिका भी निरोधक है।

यहां 'धवला'परसे एक उपयोगी शङ्का-समाधान उद्धृत किया जाता है, जिससे केवलीमें क्षुधा-तृषाके अभावका सकारण प्रदर्शन होनेके साथ साथ प्रोफेसर साहबकी इस शङ्काका भी समाधान हो जाता है कि 'यदि केवलीके सुख-दु:खकी वेदना माननेपर उनके अनन्तसुख नहीं बन सकता तो फिर कर्म सिद्धान्तमें

❋ अन्तरात्माके लिये 'विद्वान्' शब्दका प्रयोग आचार्य पूज्यपादने अपने समाधितन्त्रके 'त्यक्त्वारोपं पुनर्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम्' इस वाक्यमें किया है और स्वामी समन्तभद्रने 'स्तुत्यात्र त्वा विद्वान् सततमभिपूज्यं नमिजिनम्' तथा 'त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी' इन स्वयम्भूस्तोत्रके वाक्योंद्वारा जिन विद्वानोंका उल्लेख किया है वे भी अन्तरात्मा ही हो सकते हैं।

❋ अनेकान्त वर्ष ८, किरण १, पृष्ठ ३०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवलीके साता और असाता वेदनीय कर्मका उदय माना ही क्यों जाता *' और वह इस प्रकार है—

"सगसहाय-घादिकम्माभावेण णिस्सत्ति-मा वण्ण-असादावेदणीयउदयादो भुक्खा-तिसा-णमणुप्पत्तीए णिप्फलस्स परमाणुपुंजस्स समयं पडि परिसदं(डं)तस्स कथमुदय-ववएसो ? ण, जीव-कम्म-विवेग-मेत्त-फलं दट्ठूण उदयस्स फलत्तमब्भुवगमादो ।"

—वीरसेवामन्दिर प्रति पृ० ३७५ आरा प्रति पृ० ७४१

शङ्का—अपने सहायक घातिया कर्मोंका अभाव होनेके कारण निःशक्तिको प्राप्त हुए असाता वेदनीय-कर्मके उदयसे जब (केवलीमें) क्षुधा-तृषाकी उत्पत्ति नहीं होती तब प्रतिसमय नाशको प्राप्त होनेवाले (असातावेदनीयकर्मके) निष्फल परमाणु पुञ्जका कैसे उदय कहा जाता है ?

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं; क्योंकि जीव और कर्मका विवेक-मात्र फल देखकर उदयके फलपना माना गया है।

ऐसी हालतमें प्रोफेसर साहबका वीतराग सर्वज्ञके दुःखकी वेदनाके स्वीकारको कर्मसिद्धान्तके अनुकूल और अस्वीकारको प्रतिकूल अथवा असङ्गत बतलाना किसी तरह भी युक्ति-सङ्गत नहीं ठहर सकता और इस तरह ग्रन्थसन्दर्भके अन्तर्गत उक्त ९३वीं कारिकाकी दृष्टिसे भी रत्नकरण्डके उक्त छठे पद्यको विरुद्ध नहीं कहा जा सकता।

समन्तभद्रके दूसरे ग्रन्थोंकी छानबीन—

अब देखना यह है कि क्या समन्तभद्रके दूसरे किसी ग्रन्थमें ऐसी कोई बात पाई जाती है जिससे रत्नकरण्डके उक्त 'क्षुत्पिपासा' पद्यका विरोध घटित होता हो अथवा जो आप्त-केवली या अर्हत्परमेष्ठीमें क्षुधादि दोषोंके सद्भावको सूचित करती हो। जहांतक मैंने स्वयम्भूस्तोत्रादि दूसरे मान्य ग्रन्थोंकी छान-बीन की है, मुझे उनमें कोई भी ऐसी बात उपलब्ध नहीं हुई जो रत्नकरण्डके उक्त छठे पद्यके विरुद्ध जाती हो अथवा किसी भी विषयमें उसका विरोध उपस्थित करती हो। प्रत्युत इसके, ऐसी कितनी ही बातें देखनेमें आती हैं जिनसे अर्हत्केवलीमें क्षुधादि-वेदनाओं अथवा दोषोंके अभावकी सूचना मिलती है। यहां उनमेंसे दो चार नमूनेके तौरपर नीचे व्यक्त की जाती हैं:—

(क) 'स्वदोष-शान्त्या विहितात्मशान्तिः' इत्यादि शान्ति-जिनके स्तोत्रमें यह बतलाया है कि शान्ति-जिनेन्द्रने अपने दोषोंकी शान्ति करके आत्मामें शान्ति स्थापित की है और इसीसे वे शरणागतोंकेलिये शांति-के विधाता है। चूंकि क्षुधादिक भी दोष हैं और वे आत्मामें अशांतिके कारण होते हैं—कहा भी है कि **"क्षुधासमा नास्ति शरीरवेदना"**। अतः आत्मामें शान्तिकी पूर्ण प्रतिष्ठाके लिये उनको भी शान्त किया किया गया है, तभी शान्तिजिन शान्तिके विधाता बने हैं और तभी संसार-सम्बन्धी क्लेशों तथा भयोंसे शान्ति प्राप्त करनेके लिये उनसे प्रार्थना की गई है। और यह ठीक ही है जो स्वयं रागादिक दोषों अथवा क्षुधादि वेदनाओंसे पीडित हैं—अशान्त हैं —वह दूसरोंके लिये शान्तिका विधाता कैसे हो सकता हैं ? नहीं हो सकता।

(ख) 'त्वं शुद्धि-शक्त्योरुदयस्य काष्ठां तुला-व्यतीतां जिन शान्तिरूपामवापिथ' इस युक्त्यनु-शासनके वाक्यमें वीरजिनेन्द्रको शुद्धि, शक्ति और शान्तिकी पराकाष्ठाको पहुंचा हुआ बतलाया है। जो शान्तिकी पराकाष्ठा(चरमसीमा)को पहुंचा हुआ हो उस में क्षुधादि वेदनाओंकी सम्भावना नहीं बनती।

(ग) 'शर्म शाश्वतमवाप शङ्करः' इस धर्म-जिनके स्तवनमें यह बतलाया है कि धर्मनामके अर्हत्परमेष्ठीने शाश्वत सुखकी प्राप्ति की है और इसीसे वे शङ्कर-सुखके करनेवाले हैं। शाश्वतसुखकी

* अनेकान्त वर्ष ८, किरण २, पृ० ८६।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवस्थामें एक क्षणके लिये भी क्षुधादि दुःखोंका उद्भव सम्भव नहीं। इसीसे श्रीविद्यानन्दाचार्यने श्लोकवार्तिकमें लिखा है कि "क्षुधादिवेदनोद्भूतौ नार्हतोऽनन्तशर्मता" अर्थात् क्षुधादि वेदनाकी उद्भूति होनेपर अर्हन्तके अनन्तसुख नहीं बनता।

(घ) 'त्वं शम्भवः सम्भवतर्षरोगैः सन्तप्यमानस्य जनस्य लोके' इत्यादि स्तवनमें शम्भवजिन को सांसारिक तृषा-रोगोंसे प्रपीडित प्राणियोंकेलिये उन रोगोंकी शान्तिके अर्थ आकस्मिक वैद्य बतलाया है। इससे स्पष्ट है कि अर्हज्जिन स्वयं तृषा रोगोंसे पीड़ित नहीं होते, तभी वे दूसरोंके तृषा-रोगोंको दूर करनेमें समर्थ होते हैं। इसी तरह 'इदं जगज्जन्म-जरान्तकार्तं निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वं' इस वाक्यके द्वारा उन्हें जन्म-जरा-मरणसे पीडित जगतको निरञ्जना शान्तिकी प्राप्ति करानेवाला लिखा है, जिससे स्पष्ट है कि वे स्वयं जन्म-जरा-मरणसे पीडित न होकर निरञ्जना शान्तिको प्राप्त थे। निरञ्जना शान्तिमें क्षुधादि वेदनाओंके लिये अवकाश नहीं रहता।

(ङ) 'अनन्त दोषाशय-विग्रहो-ग्रहो विषङ्गवान्मोहमयश्चिरं हृदि' इत्यादि अनन्तजित्के स्तोत्रमें जिस मोहपिशाचको पराजित करनेका उल्लेख है उसके शरीरको अनन्तदोषोंका आधारभूत बताया है, इससेस्पष्ट है कि दोषोंकी संख्या कुछ इनीगिनी ही नहीं है बल्कि बहुत बढी-चढी है, अनन्तदोष तो मोहनीयकर्मके ही आश्रित रहते हैं। अधिकांश दोषोंमें मोहकी पुट ही काम किया करती है। जिन्होंने मोह कर्मका नाश कर दिया है उन्होंने अनन्तदोषोंका नाश कर दिया है। उन दोषोंमें मोहके सहकारसे होनेवाली क्षुधादिकी वेदनाएँ भी शामिल हैं, इसीसे मोहनीयके अभाव हो जानेपर वेदनीयकर्मको क्षुधादि वेदनाओंके उत्पन्न करनेमें असमर्थ बतलाया है।

इस तरह मूल आप्तमीमांसा ग्रन्थ, उसके ९३ वीं कारिका सहित ग्रन्थ सन्दर्भ, अष्टसहस्री आदि टीकाओं और ग्रन्थकारके दूसरे ग्रन्थोंके उपर्युक्त विवेचनपरसे यह भले प्रकार स्पष्ट है कि रत्नकरण्डका उक्त क्षुत्पिपासादि-पद्य स्वामी समन्तभद्रके किसी भी ग्रन्थ तथा उसके आशयके साथ कोई विरोध नहीं रखता अर्थात् उसमें दोषका क्षुत्पिपासादिके अभावरूप जो स्वरूप समझाया गया है वह आप्तमीमांसाके ही नहीं; किन्तु आप्तमीमांसाकारकी दूसरी भी किसी कृतिके विरुद्ध नहीं है; बल्कि उन सबके साथ सङ्गत है। और इसलिये उक्त पद्यको लेकर आप्तमीमांसा और रत्नकरण्डका भिन्न-कर्तृत्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। अतः इस विषयमें प्रोफेसर साहबकी प्रथम आपत्तिके लिये कोई स्थान नहीं रहता—वह किसी तरह भी समुचित प्रतीत नहीं होती।

(शेष अगली किरणमें)

साहित्य परिचय और समालोचन

१ षट्खण्डागम-रहस्योद्घाटन—

लेखक, विद्वद्वर पण्डित पन्नालाल सोनी न्यायसिद्धान्तशास्त्री। प्रकाशक पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री जैनबुकडिपो, सोलापुर। मूल्य सदुपयोग।

'संजद' पदको लेकर विद्वानोंमें जो चर्चा चली थी और जिसके सम्बन्धमें विविध विद्वानोंने लेखादि लिखे तथा विद्वत्परिषद्ने ९३ वें सूत्रमें 'संजद' पदके रहनेका निर्णय दिया इसीके सम्बन्धमें प्रस्तुत पुस्तकमें सप्रमाण प्रकाश डाला गया है। सोनीजीने अनेक उपपत्तियों और प्रमाणों द्वारा उक्त सूत्रमें 'संजद' पद की स्थितिको सिद्ध करके विद्वत्परिषद्के निर्णयका समर्थन किया है। सोनीजीकी इसमें स्थान स्थानपर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट विद्वत्ता और आगमज्ञान तो कितने ही विद्वानों-के लिये स्पर्धाकी चीज है। उनके 'तहलका मचा रक्खा' 'मुख्यनेता' 'मोटे' जैसे आक्षेपरक शब्द और अन्तमें प्रकाशित परिशिष्ट इसमें न होते तो अच्छा था। पुस्तकका योग्य सम्पादन अपेक्षित था जिससे भाषा-साहित्य आदिकी त्रुटियां न रहतीं। फिर भी समाज सोनीजीकी विद्वत्ता और सेवाभावनाकी निश्चय ही क़ायल है। काश ! ऐसे विद्वान साहित्यिक क्षेत्रमें आकर साहित्यसेवामें जुटते तो उनसे बड़ी साहित्यसेवा होती।

२ रेडियो---

लेखक, श्री रा० र० खाडिलकर। प्रकाशक, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा। मूल्य ।।।)।

प्रस्तुत पुस्तकमें रेडियो सम्बन्धी समस्त प्रकारकी जानकारी दी गई है। रेडियोका प्रचार, रेडियोका विज्ञान, वेतार विद्या, जाड़ोंमें रेडियो अच्छा क्यों सुनाई देता है ?, रेडियोके विभिन्न वरन, रेडियो यंत्र में खरावी और उसके उपाय ? रेडियोपर खबरें, समयका अन्तर, ब्रिटेनका समय, यूरोपका समय, भारतीय समय, अमेरिकन समय, भारतीय रेडियोका भविष्य जैसे गहन वैज्ञानिक विषयोंको लिये हुए उनपर पर्याप्त और सरल हिन्दीमें प्रकाश डाला गया है। आज भारतमें रेडियोका प्रचार बराबर बढ़ता जा रहा है। ऐसे समयमें यह पुस्तक रेडियोका ज्ञान करनेके लिये बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। संयुक्त प्रान्तके शिक्षा मन्त्री बा० सम्पूर्णानन्दने 'दो शब्द' वक्तव्यमें इस पुस्तकका स्वागत करते हुए लिखा है—'इस छोटी-सी पुस्तकको पढनेसे कोई भी शिक्षित व्यक्ति, चाहे वह भौतिक विज्ञानका विशेषरूपसे विद्यार्थी न भी हो, रेडियो सम्बन्धी आवश्यक बातोंकी काम चलानेभर जानकारी प्राप्त कर सकता है'। इसे एकबार मंगाकर अवश्य पढ़ना चाहिए।

३ जैन इंस्टिटय़ूशन्स इन देहली---

ले०, बा० पन्नालाल जैन अग्रवाल देहली। प्रकाशक जैनमित्रमण्डल, धर्मपुरा देहली। मू० चार आने।

यह अंग्रेजीमें देहलीकी सभी जैन संस्थाओंकी संक्षिप्त परिचय-पुस्तिका है और देहली जैसे बड़े शहरमें आने वाले यात्रियोंकेलिये जैन गाइडकेरूपमें अच्छे कामकी चीज है—साथमें एक नक्शा भी लगा हुआ है जिसने इसकी उपयोगिताको बढ़ा दिया है। इसके सहारेसे कोई भी यात्री सहजमें ही यह मालूम कर सकता है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायोंके कौन कौन मन्दिर, स्थानक, विद्यालय, औषधालय, स्कूल, पाठशाला, धर्मशाला, शास्त्र-भण्डार, लायब्रेरी तथा सभा सोसाइटी आदि दूसरी संस्थाएँ किस किस मुहल्ले गली-कूचे आदिमें कहांपर स्थित हैं और उनकी क्या कुछ विशेषताएँ हैं। और इस तरह वह इधर उधर भटकने तथा पूछताछ करने के कष्टसे मुक्त रहकर अपना बहुत कुछ समय बचा सकता है और यथेष्ट परिचय भी प्राप्त कर सकता। पुस्तक अच्छे परिश्रमसे लिखी गई है, उसके लिये लेखक और उनके सहायक सभी धन्यवादके पात्र हैं।

बाहु-बली--- (राष्ट्रीय काव्य)— लेखक, श्री० हीरक, प्राप्तिस्थान सगुनचन्द चौधरी स्याद्वाद विद्यालय, भदैनी बनारस, मूल्य ।।)।

इसमें कवि श्री हीरकने बाहुबलीका चरित्र ग्रन्थन करनेका प्रयास किया है। भूमिका हिन्दी विभाग हिन्दू विश्वविद्यालयके प्रो० डा० श्रीकृष्णलाल एम. ए. पी. एच. डी. ने लिखी है। संस्कृत शब्दोंके बाहुल्यने काव्यकी कोमलता और सरसताको सुरक्षित नहीं रख पाया फिर भी कविका इस दिशामें यह प्रथम प्रयत्न है। आशा है उनके द्वारा भविष्यमें अधिक प्राञ्जल रचनाओंका निर्माण हो सकेगा।

महावीर-दर्शन---(पद्यमय रचना)

लेखक पण्डित लाल बहादुर शास्त्री, प्राप्तिस्थान नलिनी सरस्वती मन्दिर, भदैनी बनारस, मूल्य ≈)॥

यह ७१ पद्योंकी सरस और सुन्दर रचना है। इसमें भगवान महावीरका आकर्षक ढङ्गसे संक्षेपमें जीवन-परिचय दिया गया है। पुस्तक लोकरुचिके अनुकूल है और प्रचार योग्य है।

—दरबारी लाल कोठिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्मृतिकी रेखाएँ—

विमल भाई

[लेखक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय]

['स्मृतिकी रेखाएं' नामका नया स्तम्भ हम अनेकान्तमें स्थायी रूपसे जारी कर रहे हैं। इसके अन्तर्गत अपने जीवनकी सभी घटनाएँ जो भूली न जा सकें, लिखनेके लिये हम पाठकोंको निमन्त्रण देते हैं। जीवनमें अनेक ऐसी घटनाएँ घटतीं हैं जो कथा-कहानियोंसे अधिक रोचक और मर्मस्पर्शी होती हैं। हमारे आस-पास ऐसे अनेक व्यक्ति रहते हैं, जिनके उल्लेख साहित्यकी बहुमूल्य निधि बन सकते हैं। ये ही स्मृतिकी रेखाएँ संकलित होकर सजीव इतिहास बन जाते हैं। अनुभवी लेखकोंके जब तक लेख न मिलें तब तक हमीं कुछ टेढ़ी मेढ़ी रेखाएँ खींचने रहनेकी धृष्टता करेंगे।]

मेरे एक अत्यन्त स्नेही साथी हैं, जिन्हें कुछ लोग 'ख़प्ती भाई' कहते हैं, कुछ लोग उन्हें सनकी समझते हैं और कुछ समझदार दोस्तों का फ़तवा है कि इनके मस्तिष्क का एक पेंच ढीला है।

मेरा इनसे सन् २५ से परिचय है। इन २२ वर्षों में समीपसे समीपतर रहनेपर भी मुझे इनमें ख़फ़्त और सनकका आभास तक नहीं मिला फिर भी मैं हैरान हूं कि हे सर्वज्ञ ! क्या ये आपके ज्ञानमें भी ख़प्ती और सनकी झलके हैं ?

गोरा शरीर, किताबी चेहरा, आंखें बड़ीं और रसीली चौड़ी पेशानी, मझोला क़द, सुडौल कसरती जिस्म, शरीरपर स्वच्छ और धवल खादीकी मोहक पोशाक, चालढालमें मस्ती और स्फूर्ति। एफ० ए० तक शिक्षा, भले और प्रतिष्ठित घरमें जन्म, बातचीतमें आकर्षण, राष्ट्रीय विचारों और लोकसेवी भावनाओंसे ओतप्रोत। महात्मा गांधीसे किसीका दिल दुखा हो, परन्तु इनसे असम्भव। फिर भी दोस्तोंके दायरेमें मज़हका-खेज़ बने हुए हैं और उसपर तुर्रा यह कि बुरा माननेके बजाय फूलकी तरह खिलते रहते हैं।

एक रोज़ मैं और एक मेरे साहित्यिक मित्र विमल भाईकी चर्चा कर रहे थे और उनपर फब्तियां कसने वालोंपर छींटे उड़ा रहे थे कि समीप ही बैठा हुआ उनका ११-१२ वर्षका छोटा भाई पढ़ते-पढ़ते बेसाख्ता बोला – "हाँ हाँ वह ख़प्ती है, सनकी है; मैं शर्त बद कर कहताहूँ"।

अब हमारी क्या सामर्थ्य थी जो बात काटते। एक तो छोटा, दूसरे शर्त बदनेको तैयार। फिर भी हिम्मत बांधकर पूछ ही बैठे — हुज़ूरको उसमें क्या ख़फ़्त दिखाई देता है ?

वह एक अजीब-सा मुँह बनाकर बोला — एक ख़फ़्त। अजी भाई साहब ! वह सरसे पैर तक खफ़्त ही खफ़्तसे ढका हुआ है। जिस मुहंनीमें कुत्ते न झाँकें वहां इन्हें देख लीजिये। सुबह शाम हजरतके हाथमें ऐरे गैरे नत्थूखैरोंकेलिये दवाओंकी शीशियां रहती हैं खुदके पांवमें साबुत जूतियां नहीं और उस रोज दूकान बेचकर उस ...... नादिहन्दको दो हजार दे दिये जिससे पठान भी तोवा माँग चुके हैं। उस रोज स्कूल से आते हुए यारोंने उन्हें बनानेके ख़यालसे कहा—

बड़े भाई आज तो ईखका रस पिलवाओ। थोड़ी देरमें क्या देखते हैं कि हम ८-१० साथियोंकेलिये ईख रसके बजाय सन्तरेके रसके गिलास आरहे हैं। हमने खिलाफ़ तवक्क़ह देखकर पूछा—' बड़े भाई यह क्या तकल्लुफ़ ?" फर्माया — "आप लोग कब बारबार पिलानेको कहते हैं।"

"रस पी चुकने पर हम सबकी मुश्तर्का राय थी कि विमल भाई ख़प्ती होनेके साथ साथ बुद्धू भी हैं"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लड़केने अपनी बात कुछ इस ढंगसे कही कि मेरे वे साहित्यिक मित्र तपाकसे बोले — हां यार इनके खब्तका एक ताजा लतीफ़ा तो सुनो।—

"पुकार फिल्ममें किस क़दर रश है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। विमल भाईने भी भीड़में घुसकर ४–५ फर्स्टक्लास टिकट खरीद लिये। एक तो अपनेलिए बाकीके परिचित या मुहल्लेके लोगोंके लिए, इस ख़यालसे कि कोई आये तो परेशान न हों। दर्शकोंकी भीड़ हालमें घुसी जारही है और विमल हैं कि आने वाले परिचितोंकी प्रतीक्षामें बाहर सूख रहे हैं। और जब राम-राम करके टिकिटोंसे मुक्ति पाई तो हालमें तिल रखनेको जगह न थी टिकिट जिन साहबने लिये, उनमेंसे किसीने फ्री पास समझकर और किसी ने बुरा न मान जाएं इस भयसे टिकिटके दाम नहीं दिये। एक साहबने दाम देनेकी ज़हमत फर्माते हुए अठन्नी उनके हाथपर रखी और बोले जब हाउस फुल हो गया तो टिकिटके पूरे दाम कैसे?"

यह लतीफा उन्होंने इस अन्दाज़में बयान किया कि हम लोट-पोट गये। रातको सोने लगा तो मुझे विमलभाईकी ऐसी कई बातें स्मरण हो आईं, जिन्हें मैं अबतक उनकी खूबियां तसव्वुर किया करता था। अब जो दुनियांकी ऐनक लगाकर देखता हूं तो रङ्ग ही दूसरा नज़र आने लगा।

सन् १९३३ की बात है। मुझे ऐतिहासिक अनुसन्धानके लिये अकस्मात् उदयपुर जाना उसी रोज़ आवश्यक होगया। मार्ग-व्ययके लिये तो रुपये उधार मिल गये। और ठहरने आदिकी सुविधा इतिहास-प्रेमी बलवन्तसिंहजी मेहताके यहां हो गई। परन्तु पहननेके कपड़े मेरे पास कतई नहीं थे। जेलसे आकर बैठा था। जो कपड़े थे उनमेंसे कुछ धोबीके यहां थे, कुछ मैले पड़े थे। स्वच्छ एक भी न था। और उदयपुर जाना उसी रोज़ अत्यन्त आवश्यक था। बड़ी असमञ्जस और चिन्तामें था कि यकायक विमलभाई आये और बोले कि सुना है आप उदयपुर जा रहे हैं, वहां आपको कई रोज़ लगेंगे। मेरे पास फाल्तू कपड़े तो नहीं हैं, परन्तु आप घरपर दिनभर रहें तो आपके सब कपड़े धो दूं। मजबूरन विमल भाईको कपड़े देने पड़े। शामको धोकर दिये तो इतने स्वच्छ कि धोबी भी देखकर शर्माये।

गतवर्ष गर्मीके दिनोंमें आपके यहां चोरी होगई। जिन विस्तरोंपर आप आराम फर्मा रहे थे, उनको छोड़कर नक़द, जेवर, कपड़े, बर्तन सब ले गये। लगे हाथ झाड़ू भी दे गये ताकि सुबह उठकर सर पीटकर रोनेके अतिरिक्त आपको झाड़ू देनेकी ज़हमत न उठानी पड़े। समाचार सुना तो घबड़ाया हुआ विमलभाईके यहाँ पहुंचा। समझमें नहीं आता था कि इस मंहगी और कण्ट्रोलके जमानेमें अब कैसे पौन दर्जन फौजका तन ढकेंगे। और हवा-पानीके अलावा क्या खाने-पीनेको देंगे। सान्त्वना देनेके लिये न कोई शब्द सूझते थे, न कोई कमबख्त शेर ही याद आता था। इसी उधेड़बुनमें मुंह लटकाये पहुंचा तो विमलभाई देखते ही खिल उठे और मैं कुछ कहूँ इससे पहले स्वयं ही बोले—

"भाई! हमारा तो सदैवके सङ्कटसे पीछा छूट गया। यक़ीनन आजसे हमारे बुरे दिन गये और अच्छे दिन आये।"

मैंने समझा कि विपताका पहाड़ टूट पड़नेसे विक्षिप्त हो गया है। परन्तु वह विक्षिप्त नहीं था, फिर बोला—'भाई! यह परिग्रह ही सब झगड़ोंकी जड़ है इसीके कारण अनेक क्लेश और बाधाएँ आती हैं। अब सुख-चैन ही सुख चैन है। रोटियाँ तो खानेको मिलेंगी ही। आधे दर्जन बच्चे हो गये अब पत्नी ज़ेवर पहनते क्या अच्छी लगती थी? विलायती कपड़ा सब जाता रहा अब झक मारकर स्वदेशी पहनेगी!' और फिर वही चेहरेपर फूलसी मुस्कराहट

उठकर चला तो वहांसे एक साहब साथ और हो लिये। फ़र्माया—"देखा आपने इनका ख़ब्त! लोगोंके घर चोरी होती है तो दहाड़ मारकर रोते हैं और एक आप हैं कि खिल खिल हंस रहे हैं। गोया चोरी नहीं हुई, लाटरीमें हरामका रुपया हाथ लग गया है। अगर इनका वस चले तो चोरी होनेकी खुशीमें दावत देदें।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सान्त्वना प्रकट करनेके लिये तो मुझे कोई शेर याद नहीं आया, उसकी आवश्यकता भी नहीं पड़ी, परन्तु इन साथीकी बकवास पर ग़ालिबका शेर मनमें झूमने लगा —

न लुटता दिनको तो यूँ रातको क्यों बेख़बर सोता ।
रहा खटका न चोरीका दुआ देता हूं रहज़नको ॥

सन् ३० के असहयोग आन्दोलनमें आपने खद्दर की दुकान खोली। विमल भाईकी दुकानपर बाहरके व्यापारीतो तब आते जब परिचित यारोंकी कुछ कमी होती। भीड़ लग गई, लोग हैरान कि जिसने कभी दूकान नहीं की वह इस फर्राटेसे क्योंकर बिक्री कर रहा है। घरवाले भी खुश कि चवन्नी न सही दुअन्नी रुपया भी मुनाफा लिया तो २००-३०० रुपयेकी बिक्री पर २५-३० तो कहीं भी न गये। हमने स्वयं अपनी आखोंसे आपकी दुकानदारीके जौहर देखे। दुकान ऐसी चली कि २-३ माहमें ही पंख निकल आये। माँने अपने ३०००) मांगे तो एक हजार रुपये की उधारकी लिस्ट दे दी और दो हजार रुपये एकके नाम ऋण लिखे दिखला दिये।

मांने सर पीट कर कहा—'तैंने उस नादिहिन्दको दो हजार क्यों पकड़ा दिये'? फर्माया— मां तू तो बेकारमें घबड़ाती है, उसने मुझे क़सम खाकर २०००) रुपये जल्दी लोटानेको कहा है। उसे पठान तंग कर रहे थे, इसीसे उसे रुपयेकी ज़रूरत आन पड़ी थी।

इन १७ वर्षोंमें जब जब विमलभाईसे पूछा कि वे रुपये पटे या नहीं। तबतब आपने बड़े विश्वासकेसाथ कहा – "भई रुपये मारमें थोड़े ही हैं। विचारा खुद मुसीबतमें है. उससे रुपयेका तकाजा करना भलमनसाहतमें दाखिल नहीं।"

मैं इन २३ वर्षोंमें स्वयं निर्णय नहीं कर पाया कि विमलभाई खप्ती हैं या जीवनमुक्त? क्या पाठक अपनी उपयुक्त सम्मति देंगे।

डालमियानगर, २ फरवरी १६४८

हिन्दी-गौरव

(१)

बन रही मां भारतीके भालका शृङ्गार हिन्दी !
पूर्ण होने जारहे हैं स्वप्न सब अपने सजीले,
सुखद-मादक बन रहे हैं आज कवि गायन सुरीले
मिट रहे अभियोग युग-युगके, मिले वरदान नीके,
मिल रहा बलिदानका फल जल रहे हैं दीप घीके।
पा रही सब भारतीयोंके दिलोंका प्यार हिन्दी !
बन रही मां भारतीके भालका शृङ्गार हिन्दी !!

(२)

हो गये आज़ाद, पूरी हो गईं चिर-कामनाएँ;
दूर कटकर गिर पड़ी हैं दासताकी शृङ्खलाएँ।
हर्ष—पूरित लोचनोंमें मुस्कराती मृदुल—आशा,
दूर देखेंगी खड़ी सब. अन्य भाषाएँ तमाशा ॥
मुकुट हिन्दीको मिलेगा, पाएगी सत्कार हिन्दी !
बन रही मां भारतीके भालका शृङ्गार हिन्दी !!

(३)

सोचते थे हिन्दमें कब रामराज स्वराज होगा,
हिन्दी सुभगलिपि नागरीके सीसपर कब ताज होगा
कल्पनाके नील नभमें उड़ रही थी भावनाएँ,
दासताके पाशमें थीं बद्ध अपनी योजनाएँ ॥
अब करेगी सभ्यताके ज्ञानका सुप्रसार हिन्दी !
बन रही मां भारतीके भालका शृङ्गार हिन्दी !!

(४)

राज-भवनोंसे कुटी तक नागरीमें कार्य होगा,
देश भारतवर्षका अब 'आर्य' सच्चा आर्य होगा।
जीर्ण अगणित अब्दियोंके टूक सकल विधान होंगे,
मुदित होंगे श्रमिक जनसब, तुष्ट सकल किसान होंगे
विश्वमेंगूञ्जे तुम्हारा नित्य जय जयकार हिन्दी
बन रही मां भारतीके भालका शृङ्गार हिन्दी !!

पं० हरिप्रसाद
'अविकसित'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोमनाथका मन्दिर

[बा० छोटेलाल जैन, प्रेसीडेंट "गनीट्रेड्स एसोसियेशन" कलकत्ता]

आज हम अपने पाठकोंको एक ऐसे प्रदेशका दिग्दर्शन कराते हैं जिसके महत्वको मुसलमानोंके निरन्तर अत्याचारोंसे हम भूलसे गये हैं। यह स्थान है काठियावाड़, जिसका प्राचीन नाम था सौराष्ट्र। जूनागढ़की रियासत काठियावाड़में शामिल है। काठियावाड़ ३२ बड़ी रियासतोंमें विभक्त है जिनमें सबसे बड़ी जूनागढ़ है, और जूनागढ़ उन सब रियासतोंसे कर लेती है। भूतपूर्व नवाब जूनागढ़ने अपनी बहुसंख्यक हिन्दु प्रजापर नाना प्रकारके अत्याचार किये। यही नहीं, भारतके स्वतन्त्र होने पर नवाब प्रजाकी इच्छाके विरुद्ध पाकिस्तानसे मिल गया, परन्तु प्रजाकी सामूहिक शक्तिके सामने नवाबको कराची भागना पड़ा और अब पश्चिमका यह पुनीत भू-भाग प्रजाकी इच्छानुसार भारतमें मिल गया है। हम आपको यह बतलायेंगे कि काठियावाड़के प्रायद्वीप में, जिसको औरङ्गजेबने "भारतका सौन्दर्य और आभूषण" कहा था शैवों, वैष्णवों, बौद्धों, तथा जैनियोंके कितने ही प्राचीन और पवित्र मन्दिर और अन्य धर्म स्थान हैं। कितनी ही मसजिदें हिन्दु तीर्थोंकी भूमिपर ध्वस्त किये देवालयोंकी सामग्रीसे बनी हुई हैं। कितनी ही मसजिदें हिन्दु-मन्दिरोंका केवल साधारण रूपान्तर हैं, जो असलमें हिन्दुओंके ही मन्दिर हैं।

लगभग एक सहस्र वर्षसे परतन्त्रता-ग्रस्त भारतमें हिन्दुओंकी धर्मभावना मुसलमानोंके निरन्तर अत्याचारसे दलित और अर्धमृत होती रही है। आज स्वतन्त्र भारतमें भारतसरकारके उप-प्रधानमन्त्री श्रीयुत सरदार बल्लभभाई पटेलने हिन्दुओंकी धर्म भावनाको सबल और दृढ बनानेके लिये सोमनाथ मन्दिरके नव-निर्माणका परामर्श दिया है। इस घोषणासे हिन्दुओंके हृदयमें अपार हर्ष हुआ है। प्रत्येक हिन्दू सोमनाथ मन्दिरके लिये दान देनेमें गौरव समझता है, क्योंकि सोमनाथ १२ ज्योतिर्लिङ्गों में सर्व प्रथम है, और सारे भारतका महान तीर्थ है।

काठियावाड़ प्राय: चारों ओरसे जलावेष्टित है। केवल उत्तरकी ओरसे एक लम्बा सङ्कीर्ण भूमि अंश इसे गुजरातसे मिलाता है। इसी कारण गुजरात और राजपूतानेका, जो इसके उत्तरमें है, इतिहास सौराष्ट्रके मध्यकालीन इतिहाससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है।

इतिहास—

जबसे भगवान कृष्ण मथुराको छोड़कर द्वारिकामें आये, तभीसे सौराष्ट्र देश प्रकाशमें आया। द्वारिकाके यादवोंके समयसे यहां प्रभास क्षेत्रमें यात्रियोंके आने जानेका प्राचीन वर्णन मिलता है।

ईसासे ३२२ वर्ष पूर्व भारतके प्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्यके चार भागोंमेंसे सौराष्ट्र एक था। और ईसासे २५० वर्ष पूर्वका महाराजा अशोकका शिलालेख गिरनारमें मिलता है। यहां गिरनार पर्वतकी तहलटी में महाराज अशोकने सुदर्शन नामक एक विशाल झील बनवाई थी। मौर्य वंशके पतनके पश्चात् सौराष्ट्र ईसासे १५५ वर्ष पूर्व तक शुङ्ग वंशके पुष्यमित्र के आधीन रहा, उनके बाद शक क्षत्रपोंके अधिकारमें चला गया जिनमें महाराज रुद्रमन (सन् १५०) बहुत प्रसिद्ध हुए। इनका भी शिलालेख यहां मिलता है। उन्होंने सुदर्शन झीलकी, जिसका बांध टूट गया था, मरम्मत करवाई थी। फिर यहां गुप्त वंशका आधिपत्य हुआ। महाराज स्कन्दगुप्तने भी वहां एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिलालेख (सन् ४५७ का) छोड़ा है जिससे पता चलता है कि इन महाराजने भी झील सुदर्शनकी जिसका बांध फिर टूट गया था, मरम्मत करवाई थी। इन तीन उपरोक्त शक्तिशाली राजाओंने जहां अपनी धर्म-लिपि और कीर्ति-द्योतक लेख शिलाओंपर अंकित करना उचित समझा, उस स्थानका उस समय कितना अधिक महत्व होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

गुप्त वंशके पीछे बल्लभी राजाओंने सौराष्ट्र पर अपनी सत्ता जमाई। ये शिव-भक्त थे। बहुत सम्भव है कि सोमनाथ मन्दिरकी स्थापना बल्लभी राजाओंके शासनकाल (सन् ४८० से ७६४) में हुई हो। इन राजाओंके स्वयं शिव-उपासक होनेके कारण इस मंदिरकी विशेष ख्याति इन्हींके समयमें हुई हैं। इन्हीं राजाओंने सोमनाथ-मन्दिरके निर्वाहके लिये सहस्रों ग्राम दान दिये। गुजरातके अन्य राजाओंने भी सहस्रों गांव सोमनाथके नाम किये थे।

फिर सौराष्ट्रमें चूड़सम वंशकी स्थापना (सन् ८७५ के लगभग) हुई, जिसका राज्य ६०० वर्ष तक रहा, और उसके बाद मुसलमानोंके आक्रमणोंका तांता बँध गया। इस वंशका अन्तिम स्वतन्त्र राजा राव मंडलीक हुआ, जिसको यवनोंने परास्तकर मुसलमान बना लिया (सन् १४७० में) और उसका नाम खांजहां रक्खा गया और जूनागढ़का नाम मुस्तफाबाद रक्खा, परन्तु यह नाम अधिक दिन तक न चल सका।

काठियावाड़(सौराष्ट्र)की राजधानी गत १००० वर्ष से अधिक कालसे जूनागढ़ रही है। १५ वीं शताब्दीसे काठियावाड़के मुसलमान शासक या फौजदार जूनागढ़ में रहते थे। ये शासक पहले गुजरातके सुल्तानोंके, और फिर अहमदाबादके मुग़ल सूबेदारोंके अधीन रहे परन्तु मुग़ल साम्राज्यके पतनके साथ साथ १८ वीं शताब्दीके पूर्वार्धमें यहांके शासक स्वतन्त्र हो गये और अन्तमें अंग्रेजोंके अधीन हुए। अब भारतके स्वतन्त्र होनेपर यहांका नवाब किस तरहकी चालसे पाकिस्तान से मिला, और प्रजाके विरोधसे किस तरह उसे पलायन करना पड़ा यह सब तो आप लोग जानते ही हैं।

हमारा सम्बन्ध—

जूनागढ़से हमारा न केवल राजनैतिक सम्बन्ध ही है, बल्कि इससे कहीं अधिक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक सम्बन्ध भी है।

सौराष्ट्रका दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वीय प्रदेश ही विशेष कर पौराणिक युगके इतिहासका क्रीडास्थल रहा है। यहीं पर भगवान श्रीकृष्णने मथुरासे आकर द्वारिकाकी रचना की, यहीं पर यादवों सहित अनेक लीलाएँ कीं, और यहींपर श्रीकृष्णने मदोन्मत्त विशाल यादव कुलको अपनी लीलासे विनाश कराया, और यहीं पर प्रभास-पट्टन नामक पवित्र नगरके निकट असावधानीसे जरत्कुमार (व्याध)-द्वारा आहत होकर अपनी जीवन-लीला समाप्त की थी।

(१) बल्लभी,

(२) मूल द्वारिका (प्राचीन द्वारिका) जो भगवान कृष्णके निधनके पश्चात् समुद्र निमग्न हो गई,

(३) माधवपुरी (जहां भगवान कृष्णने रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया),

(४) तुलसी श्याम,

(५) सुदामापुरी (जिसको भगवान कृष्णने अपने मित्र सुदामाके लिये बनवाकर उसके दरिद्रताके पाश काटे थे, और जिसका आधुनिक नाम पोरबन्दर है)

(६) श्रीनगर,

(७) वामस्थली, (वनस्थली) इत्यादि प्राचीन नगर भी इसी दक्षिण-पूर्वीय प्रदेशमें हैं। जैनियोंके गिरनार व पालीताना(शत्रुञ्जय)नामक प्राचीन और प्रसिद्ध तीर्थ यहीं हैं। यहींपर बौद्धोंके गुहामन्दिर जूनागढ़, तलाजा, साना, धांक और सिद्धेश्वरमें हैं। यहांके अनेक अतिकलापूर्ण पाषाणनिर्मित मन्दिरोंके ध्वंसावशेषोंसे जो कि सेजकपुर, थान, आनन्दपुर, पवंदी, चौबारी तथा बढ़वानादि स्थानोंमें मिलते हैं, इससे यह बात प्रमाणित होती है कि मध्यकालमें मध्य सौराष्ट्र एक पूर्ण वैभवशाली और अति-जनाकीर्ण प्रदेश था। सन्६४० में ह्यूयेन स्यांग नामक चीनी परिव्राजक बल्लभीमें आया, और उसने भी यहांकी समृद्धिका वर्णन करते हुए लिखा है कि—यहांपर बौद्धोंके सैकड़ों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मठ, ६००० बौद्ध भिक्षु, और सैकड़ों देव मन्दिर थे। और इसी प्रदेशमें लोक-प्रसिद्ध प्रभास-पट्टनका सोमनाथ मन्दिर है।"

सोरठ देश (सौराष्ट्र) हिन्दुओंके लिए सदा ही आकर्षक रहा है। उनके लिए यह देश भूमिपर स्वर्गके समान है। यहां निर्मल-नीर-बाहिनी नदियां हैं, प्रसिद्ध(जातिके) घोड़े मिलते हैं और यहांकी रमणियां सुन्दरताके लिए प्रसिद्ध हैं। किन्तु इन सबसे ऊपर यह पवित्र स्थान है क्योंकि जैनियोंके लिए यह तीर्थंकर आदिनाथ और अरिष्टनेमि (कृष्णके चचेरे भाई)की भूमि है और हिन्दुओंके लिए महादेव और श्रीकृष्ण का देश है।

सोमनाथ पट्टन—

जिस नगरमें सोमनाथमन्दिर है उसे पटन, पट्टन पाटन प्रभासपट्टन, देवपट्टन, सोमनाथ पट्टन, रेहवास पट्टन, शिव पट्टन और सोरठी-सोमनाथ भी कहते हैं। इस अति प्राचीन नगरमें अतीत गौरवके अनेकों चिह्न मिलते हैं यहां उजड़े हुए प्राचीन सोमनाथमन्दिर और आधुनिक सोमनाथ मन्दिरके अतिरिक्त अन्य भग्नाव-शेषोंमें जामा मस्जिद भी है। यह मस्जिद एक प्राचीन विशाल सूर्य मन्दिरको जो इसी स्थानपर पहले था, नष्ट कर मन्दिरके सामानसे बनाई गई है। इसी जामा मस्जिदके थोड़ी दूर उत्तरमें पार्श्वनाथ (जैन तीर्थंकर) का एक बहुत पुराना मन्दिर था जो आजकल एक रहनेके मकानके रूपमें व्यवहृत होरहा है। इस नगरके पश्चिममें (पट्टन और बेराबलके बीचमें) माइपुरी मसजिद है जो कि एक मन्दिरको मसजिदके रूपमें रूपांतरित कर दी गई प्रतीत होती है। यहां भाटकुण्ड भी है जहां, कहा जाता है, भगवान श्रीकृष्णने शरीर छोड़ा था। इस नगरके पूर्वकी ओर तीन सुन्दर सरिताओंका त्रिवेणी सङ्गम है, जो भगवान श्रीकृष्णके शरीरका दाह-संस्कार-स्थान होनेके कारण पवित्र है यह सारा स्थान भगवान श्रीकृष्णकी लीलाओंसे सम्बन्धित है। इस स्थानको "वैराग्य क्षेत्र" कहते हैं, क्योंकि यहां पर श्रीकृष्णकी रुक्मणी आदि महा-रानियां सती हुई थीं। यहां एक गोपी तालाब है, जिसकी मृत्तिकाका रामानन्दी वैरागी, और दूसरे वैष्णव भक्त मस्तकपर लगाते हैं और इस मृत्तिकाको गोपी-चन्दन कहते हैं।

गिरनार पर्वतसे ४० मील दक्षिणकी ओर सोम-नाथका प्राचीन मन्दिर समुद्रके पूर्वी कोनेपर अब तक स्थित है। इस मन्दिरकी दीवारोंके कोई चिन्ह नहीं मिलते मन्दिरकी नींवके आस-पासकी भूमिको समुद्रकी तरङ्गोंसे बचानेके लिये एक सुदृढ़ दीवार बनी हुई है। दीवारोंकी खाली जगहको पत्थरोंसे भर कर मसजिद बना ली गई है। वर्तमान मन्दिरका जो अवशिष्टांश है वह मूलत: गुजरातके महाराजकुमार-पाल द्वारा निर्मित किये गये मन्दिरका है। जिसका निर्माण सन् ११६८ में हुवा था।

सोमनाथ मन्दिर—

पश्चिमी भारतके मन्दिरोंमें, जिनकी संख्या अग-णित है, हिन्दू धर्मके समस्त इतिहासमें काठियावाड़के दक्षिणी सागर तटपर स्थित भेरावल बन्दरके निकट सोमनाथ पट्टनका सोमनाथ मन्दिर सर्व-प्रसिद्ध है। यह सर्व भारतमें प्रसिद्ध १२ ज्योतिर्लिङ्गोंमें से प्रथम है *। और न ही किसी अन्य मन्दिरका इतिहास इतना प्राचीन है जितना कि सोमनाथका। अनेकों ही बार इसकी दीवारोंने युद्धके परिणामको देखा, और कितनी ही बार पिशाची आक्रमणकारियों द्वारा यह मन्दिर धराशायी कर दिया गया, परन्तु ज्यों ही शत्रु-ने पीठ मोड़ी त्यों ही एक अमर प्राणीकी तरह इसकी दीवारें फिर खड़ी हो गई। शङ्करकी ध्वजा फिर आकाशमें फहराने लगी, और घण्टा शङ्खों और डमरू के शब्दसे शिवकी पूजा आरम्भ होती गई।

इतिहासमें सोमनाथका मन्दिर मुख्यत: महमूद

* १२ ज्योतिर्लिङ्गोंके नाम—श्री शैल (तिलङ्गना) का मल्लिकार्जुन, उज्जैनका महाकाल, देवगढ़ (विहार) का वैद्यनाथ, रामेश्वरम् (दक्षिणभारत) का रामेश्वर, भीमानदीके मुहानेपर भीम शङ्कर, नासिकका त्रयम्बक, हिमालयका केदारनाथ, बनारसके विश्वेश्वर, गौतम (अज्ञात)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग़ज़नवीके सन् १०२५के हमलेके कारण बहुत प्रसिद्ध है। इसलाम धर्मकी कुत्सित शिक्षाके प्रभावसे महमूद ग़ज़नवीने मूर्ति-पूजाको मिटानेका मूर्खता-पूर्ण दृढ सङ्कल्प किया। और हिन्दु मन्दिरोंमेंसे प्रचुर धनराशि के उपलब्ध होनेके जघन्य लालचने इसको बिलकुल अन्धा बना दिया।

सोमनाथके मन्दिरका धारावाहिक इतिहास अभी तक सन्तोषप्रद नहीं लिखा गया है। इस मन्दिरकी स्थापना और ख्याति शायद बल्लभी राजाओंके समयसे हुई है (सन् ४८० से सन् ७६४ तक)। इस मन्दिरके दर्शनार्थ दूर २ से हिन्दु यात्री आते थे। इस मन्दिरके निर्वाहके लिये १०,००० ग्राम बल्लभी और अन्य राजाओंद्वारा दान दिये गये थे। और उस समय इस मन्दिरमें इतनी प्रचुर रत्न राशि थी कि किसी भी बड़ेसे बड़े राजाके पास उसका दशांश भी नहीं था।

सोमनाथकी सेवाके लिये २००० ब्राह्मण नियुक्त थे। इस मन्दिरके भीतर २०० मन सोनेकी ज़न्जीर से एक विशाल घड़ावल लटकती थी, जिसको निश्चित समयोंपर बजाकर भक्तोंको पूजाके लिये आह्वान किया जाता था। यात्रियोंके मुण्डनादिके लिये इस मन्दिरमें ३०० क्षौरकार (नाई) थे। ५०० नर्तकियां, और ३५० सङ्गीत विशारद और सुनिपुण वाद्यकार देव-सेवाके लिये नियुक्त थे जिनका निर्वाह पूजाके निमित्त अर्पित गांवों और राजागण तथा यात्रियोंके दानपर आधारित था। यद्यपि सोमनाथसे श्री गङ्गाजी १२०० मील दूर रही हैं, तथापि अभिषेकके लिये नित्य गङ्गाजल लानेके लिये यात्री नियुक्त थे। महमूद द्वारा ध्वस्त सोमनाथका यह मन्दिर ईंट और काष्ठका बना हुआ था, जैसी कि उस समय गुजरातकी प्राचीन मन्दिर-निर्माण प्रणाली थी।

इस मन्दिरमें ५६ सागवानके विशाल स्तम्भ थे जिनपर हीरा माणिक पन्नादि रत्न जड़े हुवे थे। ये स्तम्भ भारतके विविध राजाओं द्वारा निर्मित किये गये थे और उनके नाम उन उन स्तम्भोंपर अङ्कित थे। यह मन्दिर तेरह मञ्जिल ऊँचा था, और इसके शिखरपर चौदह सुवर्ण कलश थे जो सूर्य प्रकाशमें जगमग २ करते थे और दूरसे दिखाई पड़ते थे। विशाल शिवलिङ्गपर शृङ्गारके लिये बहुतसे रत्न-जटित आभूषण रहते थे।

महमूदका आक्रमण—

प्राचीन मुसलमान लेखकोंने इस मन्दिरके संबन्ध में बहुत कुछ लिखा है। उन लेखोंके आधारपर, जिनको अंग्रेज इतिहास-वेत्ताओंने संशोधित किया, यह सारा लेख लिखा गया है। *

जूनागढ़में मक्काका एक फ़क़ीर रहता था जिसका नाम मंगलूरी शाह था (जिसे हाजी महमूद भी कहते थे।) इसी फ़क़ीरने बार बार महमूदको सूचना दी कि सोमनाथके मन्दिरमें अथाह धन राशि है, और यहाँकी मूर्ति इस्लाम धर्मको चुनौती है। महमूद ग़ज़नवीको इसी फ़क़ीरने इस मन्दिरके विषयमें आवश्यक सब सूचनाएँ दीं।

धनकी लालसासे प्रेरित होकर, महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ मन्दिरपर आक्रमण करनेका निश्चय किया और १२ अक्तूबर सन् १०२५ में महमूद ग़ज़नवी ग़ज़नी (अफगानिस्तात स्थित) से ३०,००० चुने हुवे तुर्क नौजवान घुड़सवारोंको हथियारोंसे पूरा सुसज्जित करके मुलतानकी ओर रवाना हुआ, और मध्य नवम्बरमें मुलतान पहुंचा। मुलतानमें जब उसे मालूम हुआ कि मुलतान और सोमनाथके बीचमें एक विस्तीर्ण निर्जल तृण रहित मरुभूमि है, तो उसने हर सवारके साथ दो दो ऊंट पानीसे लदे हुवे लगा दिये। और उनके अतिरिक्त २०,००० ऊंटोंपर खाद्य पदार्थ और पानी लेकर सोमनाथकी ओर बढ़ा।

मार्गमें मुढेर या मुढेरा पड़ा जहां २०,००० हिन्दुओंने महमूदको आगे बढ़नेसे रोकनेके लिये कठिन युद्ध किया, पर महमूदको रोक न सके।

जब वह अजमेर पहुंचा तो वहांके लोगोंने इसका सामना नहीं किया तो भी महमूदने कत्लेआम, लूट,

* देखो, (१) इबनी इ-असीर (सन् ११२१, (२) मीर खोंडका रौजत उस्सफा (सन् १४६४)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्री–बच्चोंको कैद करनेका हुक्म दिया, और उनकी देव मूर्तियोंको खण्डित किया। और आगे बढ़कर भूवारा (नहेर वाला अनिहलवाड़ पट्टन) पहुंचा। उस समय वहांके राजा भीमदेव प्रथम थे। वहां पर महमूदने अपना अड्डा बनाया। यहांसे आगे बढ़ते हुवे और मार्गमें पड़ने वाले मन्दिरों और मूर्तियोंको नष्ट करते हुवे, और लूट पाट करते हुवे वह सोमनाथ के निकट बृहस्पतिवार, ६ जनवरी सन १०२६ को पहुंचा। सोमनाथमें उसने एक सुदृढ़दुर्ग देखा जिसकी प्राचीरके मस्तक तक समुद्र तरङ्गें उछलती थीं।

हिन्दु, दर्शकोंकी नाईं, दुर्गप्रवरपर चढ़कर मुसलमानी फौजको देखने लगे कि किस तरह बाबा सोमनाथ मुसलमानोंको नष्ट करते हैं। जैसी कि उनकी धारणा थी। मुसलमानी फौजने दुर्गकी प्रचीरोंपर भयङ्कर तीर वर्षा की, और "अल्लाह-हो-अकबर" का नारा लगाते हुवे क़िलेकी दीवारोंपर चढ़ गये। आक्रमण होते ही हिन्दुओंने मृत्युको हथेलीपर रखकर घोर युद्ध किया, और शत्रुके दांत खट्टे कर दिये। सारे दिनके घमासान युद्धके बाद हिन्दुओंने मुसलमानोंको भगा दिया, और मुसलमान आततायियोंने अपने शिविरोंमें शरण ली। दूसरे दिन मुसलमान ने जबरदस्त धावा किया, और हजारों हिन्दुओंको काट कर मन्दिरमें घुस गये, फिर भी हिन्दू योद्धाओंने रात होने तक दुश्मनका ज़ोरोंसे मुकाबिला किया। जो हिन्दु नोकाओंमें चढ़कर प्राणरक्षाके लिये समुद्रपथसे रवाना हुवे, उन्हें महमूदने अपनी सेना द्वारा कत्ल कराकर अथवा समुद्र निमग्न करा कर, अपना कुत्सित कार्य सफल किया। इस मन्दिरके समीप ५०,००० हिन्दुओंने अपने आराध्य देवकी रक्षामें प्राण दिये।

७ जनवरी सन् १०२६ को जब महमूद मन्दिरके अन्दर पहुंचा तो वहां पांच गज़ ऊंचा शिवलिङ्ग देखा, जिसका दो गज़ भाग भूमिमें था और तीन गज़ ऊपर था। जब इस लिङ्गको खण्डित करनेके लिये हथोड़े उठाये गये तो ब्राह्मण पुजारियोंने महमूद के साथियोंसे कहा कि यदि वे मूर्तिको खण्डित न करें तो बदलेमें करोड़ोंका सोना दिया जा सकता है।

इसपर उसके उमरावोंने महमूदको सलाह दी कि एक मूर्तिको तोड़कर सोमनाथकी दीवारोंसे मूर्ति-पूजा विलुप्त नहीं की जा सकती। अतः मूर्तिको तोड़नेसे कोई लाभ नहीं होगा। पर इतना प्रचुर धन मिलनेसे मुसलमानोंको खैरात देकर सवाब हासिल किया जा सकता है। इसपर महमूदने कहा कि बात तो कुछ ठीक है, पर वह इतिहासमें "बुतशकुन" कहलाना चाहता है, "बुतफरोश" नहीं कहलाना चाहता, और मूर्तिको भङ्ग कर दिया।

मूर्ति भङ्ग करते ही पोले लिङ्गमें से हीरे, मोती, पन्नादिकी ढेर रत्न राशि निकल पड़ी।

इस मन्दिरसे जो धन राशि मिली उसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि लूटका कुछ माल उमरावों और सैनिकोंमें वितरण किया गया। जिसका पांचवां हिस्सा महमूदको मिला जिसकी कीमत दो करोड़ दीनार थी। महमूदकी सोनेकी दीनारका वजन ६४'८ ग्रेन था। उस परिमाणसे उसका मूल्य एक करोड़ पांच लाख पाउंड होता है अर्थात् १५ करोड़ ७५ लाख रुपये हुवे। (देखो "The life and Times of Sultan Mahmud of Ghazni" by Mohamed Nazim, Cambridge 1931, Page 118) यहां पाउंड १५) रुपयेका गिना गया है और सोना २४) रुपये तोला लगाया गया है।

अलबरूनी इतिहासकारने (सन् १०३०) में लिखा है कि महमूदने लिङ्गके ऊपरके भागको तोड़ दिया और बाकीका हिस्सा अपने नगर ग़ज़नीमें ले गया। और वहां ग़ज़नीकी जामा मसजिदके द्वारपर लगवा दिया, ताकि मुसलमान नमाजी मसजिदमें घुसनेसे पहले अपने पांवकी धूलि उनसे पोंछ सकें।

साथ ही महमूद सोमनाथ-मन्दिरकी चन्दन-निर्मित दरवाजोंकी जोड़ियां भी उखाड़कर ले गया। पाठकोंको मालूम होगा कि आठ शताब्दी बाद लार्ड एलिंबराने जब अफग़ानिस्तानसे बदला लेनेके लिये पलटन भेजी, तो उसके जनरलको सोमनाथ मन्दिरके दरवाजे गजनीसे भारत लौटा लानेका आदेश दिया था जिससे कि हिन्दु प्रसन्न हों। किन्तु वह जनरल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महमूद गजनबीके मक़बरेपर लगे हुवे दरवाजोंको ही सोमनाथके चन्दन-द्वार समझकर वृथा ही उखाड़ लाया जो अब तक आगरेके किलेके एक कोनेमें पड़े हैं।

महमूद लूटका माल ले भागनेकी जल्दीमें केवल लिङ्ग तोड़ सका। इस अत्याचारसे हिन्दुओंमें रोष छा गया, और कई राजा, आबूके राजा परमर्दीदेवके नेतृत्वमें अरवली पहाड़ियों और कच्छकी रणके बीचसे जाने वाले मार्गको रोकनेके लिये आगे बढे, ताकि महमूदको रोक लिया जावे, किन्तु महमूद लड़ाईसे बचनेके लिये दूसरे मार्गसे अर्थात् पश्चिमकी ओर कच्छ और सिन्धके बीचसे होता हुवा निकल भागा। वापसीमें सिन्ध नदीके किनारे मुलतानकी तरफ जाट इसकी सेनाके पिछले भागपर टूट पड़े जिससे इसके बहुतसे सैनिक और घोड़े ऊंट मारे गये। महमूद २ अप्रेल सन् १०२६ में गजनी वापिस पहुंचा।

भागनेसे पहले कहते हैं, महमूदने मीठा-खां नामके अफसरको नियुक्त किया जिसने सोमनाथ मन्दिरको पूर्णरूपसे नष्ट किया। परन्तु अनिहिलवाड़ पट्टनके महाराज भीमदेवने (सन् १०२१-१०७३) मीठा-खांको मार भगाया और सोमनाथके मन्दिरका पुनर्निर्माण किया। महाराज सिद्धराज (सन् १०६३-११४३) ने इसको भूषित और सुसज्जित किया और अन्तमें महाराज कुमारपालने सन् ११६८ में जैनाचार्य श्री हेमचन्द्र सूरिके परामर्शानुसार ७२ लाख रुपये (जो कि उनके राज्यकी एक वर्षकी पूरी आय थी) लगाकर इस मन्दिरको सम्पूर्ण किया। कई इतिहास-कारोंका मत है कि यह नया मन्दिर पुराने मन्दिरकी जगहमें बना था। कई लेखक इसको कल्पना मानते हैं। उनका मत है कि सरस्वती नदीके मुहानेसे तीन मील पश्चिमकी ओर, और भीडिया मन्दिरसे प्राय: २०० गज़ दूरीपर जो भग्नावशेष हैं, वहींपर सोमनाथका मूल मन्दिर था।

अन्य आक्रमण—

महमूदके बाद भी इस मन्दिरपर मुसलमानोंके आक्रमण होते रहे। सन् १२६८ में देहलीके बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजीके सिपहसालार अलफखाँने इस मन्दिरको फिर धराशायी किया। लिङ्गको जड़से इस आशयसे उखाड़ा कि नीचे दबा हुवा धन मिलेगा जैसाकि धन-लोलुप मन्दिर-ध्वसंक मुसलमानोंकी रीति थी। उसने मन्दिरका नामो निशान मिटानेकी चेष्टा की।

राजा महीपालदेवने (१३०८-१३२५) फिर इस मन्दिरका निर्माण किया। सन् १३१८ में सोमनाथ मन्दिरपर फिर मुसलमानोंका आक्रमण हुवा, और मन्दिर नष्ट कर दिया गया, परन्तु राजा महीपालदेव के सुपुत्र श्री खङ्गार चतुर्थने (१३२५-५१) इस मन्दिरको फिर निर्मित किया और सोमनाथ लिङ्गकी प्रतिष्ठा की।

सन् १३६४ में गुजरातके शासक स्वधर्मत्यागी मुजफ्फरखांने पड़ोसी हिन्दु राजाओंके विरुद्ध भयङ्कर धार्मिक युद्ध (जहाद) छेड़ा, और सोमनाथके मंदिरको फिर एकबार ध्वस्त किया और इसकी जगह मसजिद बना दी। इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि मुजफ्फरखांने जितने मन्दिर तोड़े, उनकी जगह मसजिद बनाता गया। इस्लाम धर्मके प्रचार और प्रसारके लिये मौलवियोंको नियुक्त किया, और इसीने यहां पहली बार मन्दिरोंको मसजिदोंमें परिणत करनेका काम शुरू किया था।

परन्तु हिन्दुओंने सोमनाथ मन्दिरको फिरसे बना लिया। इसके बाद सन १४१३ में मुजफ्फरखांके पोते अहमदशाहने, जो अहमदाबादके अहमदशाही वंशका संस्थापक था, जूनागढके राजापर आक्रमण कियाऔर सोमनाथके मन्दिरको नष्ट किया जहांसे उसे बहुमूल्य सम्पत्ति प्राप्त हुई।

गुजरातके शासक महमूद बेगरा (मुजफ्फर-द्वितीय) ने भी सोमनाथ मन्दिरके अवशेषोंपर आक्रमण किये।

सन् १७०२-३ में जब औरङ्गजेब ८४ वर्षका हुवा तो उसने अहमदाबादके अपने सूबेदार शुजातखांको फरमान भेजा कि उसके जीवित रहते रहते सोमनाथ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिरको तुरन्त नष्ट किया जावे ताकि मूर्ति-पूजा सदाके लिये बन्द हो जाय।

मुसलमानोंके बार-बार आक्रमण, लूट और ध्वंसोंसे हिन्दुलोग हतोत्साह हो गये, और सोमनाथका मन्दिर फिर अपने उस ऐश्वर्यको नहीं प्राप्त कर सका जो उसे कुमारपालके समयमें प्राप्त था।

इन्दोरकी महारानी अहल्याबाईने प्राचीन सोमनाथ मन्दिरके स्थानको छोड़कर नये स्थानपर अन्तिम सोमनाथका मन्दिर बनवाया जो आजकल भी अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें उपस्थित है।

सोमनाथ मन्दिरका नव-निर्माण हो—

बहुत दिनोंसे हिन्दुओंकी यह एकान्त कामना रही कि किसी तरह सोमनाथ मन्दिरका निर्माण हो। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके समय लार्ड एलिनबराके शासनकालमें सोमनाथ मन्दिरके बनानेकी चर्चा उठी थी पर उसमें सफलता नहीं हो सकी। जूनागढ़के मुसलमान नवाबोंने इसका सदैव विरोध किया। यही नहीं 'देहोत्सर्ग' "वैराग्य क्षेत्र" आदि पावन स्थानोंकी हिन्दुओं द्वारा देख रेख भी मुसलमान नवाबोंके लिये असह्य हुई, और वहां पूजा करनेकी सख्त मनाई कर दी गई यहां तक कि उसके आस-पास की भूमिमें मुर्दा गाढ़कर उसे अपवित्र भी करने लगे।

जब भारत स्वतन्त्र हुवा तो जूनागढ़की प्रजाकी सुप्त प्रतिक्रिया नवाबके विरुद्ध अति उग्र हो उठी। और जब वहांका मुसलमान नवाब जनताकी इच्छाके विरुद्ध पाकिस्तानसे मिल गया, तो वहांके लोगोंने सशस्त्र स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ किया और नवाबको दुधर्ष जनसङ्घकी सामूहिक शक्तिके सामने पलायन करना पड़ा।

अतः अब समय आ गया है कि हम लोग सोमनाथ मन्दिरके अतीत गौरवको पुनः लौटाएं।

अब हिन्दुओंको अपने छिने हुए धर्मस्थानोंको वापिस लेना चाहिये। दुर्बलताका समय चला गया अब भारत स्वतन्त्र है, और भारतको बलवान बनना चाहिये। बल एकतासे आता है, और धर्म एकताके लिये सहायक होता है। हमने अपनी लापरवाही निर्बलता और फूटसे लगभग ८०० वर्ष तक परतन्त्रता की बेड़ियां पहनीं। आज कितने ही देश-भक्तोंके पुरुषार्थ और बलिदानोंके पश्चात् हम स्वतन्त्र हुए हैं। स्वतन्त्रताकी रक्षा करना हमारे हाथ है।

सोमनाथ मन्दिरके निर्माणके विषयको लेकर गनीट्रेड्स एसोसिएशन कलकत्ताके हिन्दु सदस्योंकी तथा अन्य हेसियन बोरेके कार बार करनेवालोंकी एक सभा गत सप्ताहमें हुई। उस सभामें श्रीयुक्त माधोप्रसादजी बिड़ला, केसरदेवजी जालान, भागीरथ जी कानोड़िया देवीप्रसादजी गोयनका छोटेलालजी कानोड़िया रामसहायमलजी मोर मनसुखरायजी मोर गिरधारीलालजी मेहता, विलासरायजी भिवानीवाले, केसरदेवजी कानोड़िया, तुलसीदासजी, जयलालजी बेरीवाले आदि अनेकों बोरेके कारोबारसे सम्बन्ध रखनेवाले महानुभाव उपस्थित थे।

श्रीयुक्त भागीरथजी कानोड़ियाने सोमनाथ मंदिर के नव-निर्माणके बारेमें सभाके सामने अपने विचार रखे। उन्होंने बतलाया कि रविवार ४ जनवरीको सरदार पटेलने पाट, बोरा, कपड़ा, कागज, चीनी, सीमेंट आदिके विभिन्न व्यापारिक प्रतिनिधियोंसे बिरला पार्कमें भेंट की, और उनको जूनागढ़स्थित सोमनाथ मन्दिरके नव-निर्माणके लिये सहायता करनेका परामर्श दिया। श्री भागीरथजी कनोड़ियाने बतलाया कि अन्य व्यापारवालोंने सरदार पटेलको सोमनाथ मन्दिरके लिये धन एकत्रित करनेका आश्वासन दिया है अतः बोरेके व्यापारसे सम्बन्ध रखने वाले सभी सज्जनोंको सोमनाथ मन्दिरके निर्माणके लिये दान देना चाहिये; क्योंकि सोमनाथ मन्दिर सभी हिन्दुओंका है, उन्होंने यह भी कहा कि सोम-नाथके पतनके साथ हिन्दुओंकी स्वतन्त्रता-ह्रासका इतिहास भी निहित है। अब भारत स्वतन्त्र हुआ है, अतः सोमनाथका जीर्णोद्धार अवश्य होना चाहिये। सभी उपस्थित सज्जनोंने इस कथनका सहर्ष अनुमोदन किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फिर श्री माधोप्रसादजी बिड़लाने अपने उन मित्रोंके नामोंका उल्लेख किया, जिनसे सहायताके वचन उन्होंने प्राप्त कर लिये हैं और उपस्थित सज्जनों से चन्दा लिखवानेकी अपील की। १॥ डेढ़ लाख रुपयेसे अधिककी सहायता सोमनाथ मन्दिर-कोषके लिये हेशियन बोराके व्यापारियोंसे प्राप्त हो चुकी है। चन्दा लिखानेके लिये एक सोमनाथ मन्दिर-कोष-समिति भी बनाई गई जिसमें निम्नलिखित सदस्योंके नाम हैं—श्रीयुत माधोप्रसादजी बिड़ला, केसरदेवजी जालान, देवीप्रसादजी गोयनका, छोटेलालजी कानोड़िया, रामसहायमलजी मोर, जयलालजी बेरीवाला, भागीरथजी कनोड़िया, बिलासरायजी भिवानीवाला, छोटेलालजी सरावगी। इस सब कमेटीको अन्य सदस्य लेनेका अधिकार है।

बोरे बाज़ारके दलालोंकी भी एक अलग सोम-नाथ-मन्दिर-कोष-सबकमेटी बनाई गई जिसमें निम्न लिखित सदस्योंके नाम हैं—श्रीयुत परमेश्वरीलालजी गुप्ता, जानकीदासजी बेरीवाला, बद्रीप्रसादजी परस-रामपुरिया, बनारसीलालजी फमारनिया, हरिकिसन जी आचार्य। इस सब-कमेटीको भी अन्य सदस्य लेनेका अधिकार है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि सभी हिन्दु भाई इस कोषमें प्रचुर सहायता प्रदानकर अखण्ड-हिन्दु-जाति (राष्ट्र) को सुदृढ़ बनायेंगे।

अन्तमें हम श्री बिड़ला बन्धुओंको धन्यवाद देते हैं कि इस हिन्दु जागरणके कार्यमें वे सबसे आगे आकर इस फण्डकी सफलताके लिये तन, मन, धनसे पूर्ण प्रयत्नशील हुये हैं।

अद्भुत बन्धन !

बता बता रे ! बन्दी ! मुझको,
बांधा किसने आज तुझे ?
बोला—"मेरे स्वामीने ही,
कसकर बांधा आज मुझे ॥
सोचा था धन-बल ही से मैं,
लांघ सकूं सारा संसार।
और धरा धन निजी कोष वह,
था जिसपर नृपका अधिकार ॥
निद्राके हो वशीभूत मैं,
लेट गया उस शय्यापर।
जो मेरे मालिककी प्यारी—
थी मनहर अति ही सुन्दर ॥
ज्ञात हुईं मुझको सब बातें,
जब निद्रासे जाग चुका।
हा ! मैं बन्दी बना हुआ हूं,
अपने ही कोशालयका ॥"

बता ! बनाई किसने तेरी,
यह अटूट अति दृढ बेड़ी ?
बोला बंदी—"बड़े यत्नसे,
इसको मैंने स्वयं घड़ी ॥
सोचा था करलेगा बन्दी,
जगको मेरा प्रबल प्रताप।
सदा भरूंगा शान्ति-सहित मैं,
एकाकी स्वाधीनालाप ॥
अतः रात दिन अथक परिश्रम,
करनेका सब भार लिया।
भट्टी और हथोड़ों—द्वारा,
बेड़ीको तैयार किया ॥
कड़ियां पूर्ण अटूट हुईं सब,
सभी कार्य सम्पूर्ण हुआ।
ज्ञात हुआ इनहीने मुझको,
हा ! बन्धनमें बांध लिया" ॥

[रचयिता—रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक—अनूपचन्द जैन न्यायतीर्थ]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कथा-कहानी—

करनीका फल

[लेखकः—अयोध्याप्रसाद गोयलीय]

["अनेकान्त"के दूसरे और तीसरे वर्षमें इस स्तम्भके नीचे ऐतिहासिक, पौराणिक और मौखिक सुनी हुई ऐसी छोटी-छोटी शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक कहानियां दी जाती रही हैं, जो प्रवचनोंमें उदाहरणका काम दे सकें। इस तरहकी छोटी-छोटी लाखों कहानियां लोगोंके हृदयोंमें बिखरी पड़ी हैं, जो अक्सर हमारे घरोंमें सुनाई जाती हैं और सीने बसीने चली आरही हैं। परन्तु कागजोंमें लिखी नहीं मिलती। ये कहानियां हमारे देशकी अमूल्य निधि हैं। ये कल्पित उपन्यास और कहानियोंसे अधिक रोचक और हृदयस्पर्शिनी होती हैं। ऐसी छोटी-छोटी कहानियां भेजने वालोंका अनेकान्त स्वागत करेगा। कहानियोंकी आत्मा चाहे ऐतिहासिक या पौराणिक हो अथवा सुनी सुनाई हो, परन्तु उसकी भाषाका परिधान स्वयं लेखकका होना चाहिए। नमूनेके तौरपर हम एक कहानी दे रहे हैं, यद्यपि वह कुछ बड़ी होगई है, अगले अंकोंमें छोटी भी देनेका यत्न किया जायगा। —गोयलीय]

एक-एक करके आठ पुत्र-वधुओंके भरी जवानीमें विधवा हो जानेपर भी वृद्धकी आंखोंमें आंसू न आये। साम्यभावसे सब कुछ सहन करता रहा। अपने हाथों आग देकर इस तरह घर आन बैठा जिस तरह लार्ड वेवल बङ्गालके अकाल पीड़ितोंको एड़ियाँ रगड़ते-रगड़ते देखकर दिल्ली आ बैठते थे।

गाँवके कुछ लोग उसके धैर्यकी प्रशंसा उसी तरह करते, जिस तरह आज काश्मीर महाराजके साहसकी कर रहे हैं। कुछ लोग बज्र हृदय कहकर उसका उपहास करते। श्मशानमें जिन्हें शीघ्र वैराग्य घेर लेता है और फिर घर आकर सांसारिक कार्योंमें उसी तरह लिप्त हो जाते हैं, जिस तरह पं० नेहरू मुस्लिमलीगी आक्रमणोंको भूलकर व्यस्त हो जाते हैं। ऐसे लोग उन्हें जीवन्मुक्त और विदेह कहनेसे न चूकते और छिद्रान्वेषी उन्हें मनुष्य न मानकर पशु समझते।

बात कुछ भी हो, एक-एक करके ब्याहे-त्याहे ८ लड़के दो वर्षमें उठ गये। उनकी स्त्रियोंके करुणक्रन्दनसे पड़ोसियोंको रुलाई आ जाती, पर वृद्ध खटोलेपर चुपचाप उसी तरह बैठा रहता जैसे भूखसे बिलखतोंको देखकर राशनिङ्ग अफसर बैठा रहता है।

कुछ दिनों बाद गांवमें प्लेगकी आन्धी आई तो उसमें उसका एकमात्र पौत्र भी लुढ़क गया। वृद्धके धैर्यका बान्ध टूट गया, उसने अपना सर दीवारसे दे मारा। नारदमुनि अकस्मात् उधरसे निकले तो वृद्धको टकराते हुये देखकर उसी तरह खड़े हो गये जिस तरह अपहृत अबलाओंके धैर्य बन्धानेको नेता पहुंच जाते हैं। या आग और पानीमें छटपटाते मनुष्योंको देखने न्यूज़-रिपोर्टर रुक जाते हैं।

विपद्-ग्रस्तको देखकर सूखी सहानुभूति प्रकट करनेमें लोगोंका बिगड़ता ही क्या है? जो कल दहाड़ मारकर रोते देखे गये हैं, वे भी उपदेश देनेके इस सुनहरी अवसरसे नहीं चूकते। फिर नारदमुनि तो आखिर नारदमुनि ठहरे! जिस प्रकार आर्यसमाजको मक्केमें वैदिक धर्मका झण्डा फहरानेका अधिकार सुरक्षित है या हसननिज़ामीको सात करोड़ हरिजनोंको मुस्लिम बनानेके हक़ूक़ हासिल हैं। ऐसे ही कर्तव्यभारके नाते कण्ठमें मिसरी घोलते हुये नारदमुनि बोले—

"बाबा! धैर्य रखो, रोनेसे क्या लाभ?"

वृद्धने अजनबीसी आवाज़ सुनी तो अचकचा कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देखा, तो पीताम्बर पहने और हाथमें वीणा लिये नारद दिखाई दिये। वृद्ध उन्हें साधारण भिक्षु समझ कर भरे हुए कण्ठसे बोला—स्वामिन् धैर्यकी भी कोई सीमा है। एक-एक करके आठ बेटोंको आगमें धर आया। अब ले देकरके घरमें एक टिमटिमाता दीपक बचा था, सो आज वह भी क्रूरकाल आन्धीने बुझा दिया फिर भी धैर्य रखनेको कहते हो, बाबा! धैर्य मेरे पास अब है ही कहां जो उसे रखूं, वह तो कालने पहले ही छीन लिया। मुझे अब बुढापेमें रोनेके सिवाय और काम भी क्या रह गया है स्वामिन्!

सहनशक्तिसे अधिक आपत्ति आनेपर आस्तिक भी नास्तिक बन जाते हैं। जो पर्वत सीना ताने हुए करारी बून्दोंके बार हँसते हुए सहते हैं, वे भी आग पड़नेपर पिघल उठते हैं। ज्वालामुखीसे सिहर उठते हैं। नारदको भय हुआ कि वृद्ध नास्तिक न हो जाय अत: बोले—

"तो क्या तुम अपने पौत्रकी मृत्युसे सचमुच दुखी हो? वह तुम्हें पुन: दिखाई दे जाय तो क्या सुखी हो सकोगे?

वृद्धने निर्निमेष नेत्रोंसे नारदकी ओर उसी तरह देखा जिस तरह नङ्गी उघारी स्त्रियां लाईनमें खड़ी कपड़ेकी दुकानकी ओर देखतीं हैं। वृद्धने अपने हृदयकी वेदनाको आंखोंमें व्यक्त करके अपनी अभिलाषाको उसी मौन भाषामें प्रकट कर दिया जिस भाषामें बङ्ग-महिलाओंने सतीत्व-लुटनेकी व्यथाको महात्मा गान्धीपर ज़ाहिर किया था।

नारदकी मायासे क्षितिजपर पौत्र दिखाई दिया तो वृद्ध विह्वल होकर उसी तरह लपका जैसे सिनेमा शौक़ीन टिकट घरकी ओर लपकते हैं।

"अरे मेरे लाल, तू कहां चला गया था"?

"अरे दुष्ट तू मेरे शरीरको छूकर अपवित्र न कर पूर्व जन्ममें तूने और तेरे आठ पुत्रोंने जिन लोगोंको यन्त्रणाएँ पहुंचाई थीं। ऐश्वर्य और अधिकारके मदमें जिन्हें तूने मिट्टीमें मिला दिया था। वे ही निरीह प्राणी तेरे पुत्र और पौत्र रूपमें जन्मे थे। ये रुदन करती हुईं तेरी आठों पुत्र बधू तेरे पूर्व जन्मके पुत्र हैं, जिन्होंने न जाने कितनी विधवाओंका सतीत्व हरण किया था"।

स्वर्गीय आत्मा विलीन हो गई। वृद्धके चेहरेपर स्याही-सी पुत गई। नारदबाबा वीणापर गुनगुनाते चले गये—

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।

भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, ३ फरवरी १९४८

क्या सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तकालमें स्त्रीवेदी हो सकता है?

[लेखक—बाबू रतनचन्द जैन, मुख्तार]

श्री षट्खण्डागमके ९३ सूत्रपर 'संजद' पदके विषयमें चर्चा चलते हुए एक यह विषय भी विवाद रूपमें आगया कि असंयत-सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त कालमें स्त्री-वेदी हो सकता है या नहीं? द्रव्य-स्त्री होना तो किसीको इष्ट नहीं है, केवल भाव-स्त्री या स्त्री वेदके उदयपर विवाद है। इस विषयमें पं० फूलचन्दजीशास्त्री पं० दरबारीलालजी न्यायाचार्य आदि विद्वानोंने युक्ति तथा आगम प्रमाण द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि असंयत सम्यग्दृष्टिके अपर्याप्त कालमें स्त्रीवेदका उदय नहीं होता, यहां पटखंडागमके तृतीयखंड बंधस्वामित्व-विचयकी श्री वीरसेन स्वामि-कृत धवला टीकासे स्पष्ट है।

१. पत्र १३० सूत्र ७५में कहा है— मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, एवं मनुष्यनियोंमें तीर्थंकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति तक ओघके समान जानना चाहिये। विशेषता इतनी है कि द्विस्थानिक और अप्रत्याख्यानावरणीयकी प्ररूपणा पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। इस सूत्रकी टीकामें पत्र १३१ पर श्री वीरसेन स्वामीने जहां भेद है उसे बताया लिखा है कि मिथ्यादृष्टिमें ५३, सासादन में ४८, सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें ४२ और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ४४ प्रत्यय होते हैं; क्योंकि यहां वैक्रियिक व वैक्रियिकमिश्र प्रत्यय नहीं होते मनुष्यनियोंमें इसी प्रकार प्रत्यय होते हैं। विशेष इतना है कि सब गुणस्थानोंमें पुरुष व नपुंसक वेद, असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें औदारिकमिश्र व कार्मण, तथा अप्रमत्तगुणस्थानमें आहारक द्विक प्रत्यय नहीं होते। प्रकट है कि प्रत्यय (आस्रवके कारण) मूलमें चार और उत्तर सत्तावन होते है। इन में से कौन २ और कितने प्रत्यय किस २ गुणस्थानमें होते हैं, यह सब पत्र २०से २७ तक टीकाकारने कथन किया है। यहांपर इस कथनसे कि मनुष्यनियोंमें सब गुणस्थानमें पुरुष व नपुंसक वेद और अप्रमत्तगुणस्थानमें आहारद्विक प्रत्यय नहीं होते, स्पष्ट हो जाता है कि गति मार्गणामें मनुष्यनी शब्दसे आशय भावस्त्री का है, द्रव्य-स्त्रीका नहीं। यदि द्रव्यस्त्रीका आशय होता तो मनुष्यनीमें अप्रमत्त गुणस्थानको न कहते और पुरुष व नपुंसकवेदका अभाव भी नहीं कहते, क्योंकि द्रव्य-स्त्रीके अप्रमत्तगुणस्थान संभव नहीं और वेद विषमतामें पुरुष व नपुंसक प्रत्यय हो सकते हैं। यहांपर मनुष्यनियोंमें पर्याप्त व अपर्याप्त अवस्था का भी विचार किया गया है; क्योंकि औदारिकमिश्र व कार्मण प्रत्ययोंका कथन है जो केवल अपर्याप्त कालमें ही होते हैं। मनुष्यनियोंके असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें औदारिकमिश्र व कार्मण प्रत्यय नहीं होते। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यनियोंके अपर्याप्त कालमें सम्यक्त्व नहीं होता।

२. योग मार्गणानुसार औदारिकमिश्रकाययोगियों में पांच ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियोंके बन्धक मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, और असंयतसम्यग्दृष्टि कहे हैं (सूत्र १४४ व १४५ पत्र २०५ व २०६)। यहां टीकामें श्री वीरसेन स्वामीने स्वोदय-परोदय बन्ध बताते हुए पत्र २०७, पंक्ति १६-२० में पुरुषवेदका बंध असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें स्वोदयसे कहा है, परोदय से नहीं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें मनुष्य व तिर्यंचोंके अपर्याप्त कालमें केवल पुरुषवेदका ही उदय होता है। स्त्री या नपुंसक वेदका उदय नहीं रहता। यदि स्त्री या नपुंसक वेदका उदय भी सम्यग्दृष्टिके अपर्याप्तकालमें होता तो पुरुषवेदका बन्ध स्वोदय न कह कर स्वोदय-परोदय कहते। जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि व सासादन-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें कहा है। अतः जिसके औदारिक मिश्रकाय योगमें सम्यक्त्व होगा उसके स्त्री वेद नहीं होगा।

३. पत्र २०८में औदारिकमिश्रकाययोगके प्रत्यय बताते हुए पंक्ति २१में असंयतसम्यग्दृष्टिके बत्तीस प्रत्यय होते हैं। चूंकि असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें स्त्री और नपुंसकवेदोंके साथ बारह योगोंका अभाव है। इससे भी यह सिद्ध होता कि है मनुष्य व तिर्यंचोंके अपर्याप्त कालमें असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें स्त्री वेदका उदय नहीं होता।

४. पत्र २३५ पर कार्मणकाययोगियोंमें प्रत्यय बताते हुए पंक्ति १८ में यह कहा है कि अनन्तानुबन्धि चतुष्क और स्त्रीवेदको कम करनेपर असंयतसम्यग्दृष्टियोंके तेतीस प्रत्यय होते हैं। यहांपर नपुंसक वेद को कम नहीं किया है; क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि मर कर नरकमें जा रहा है उसके नपुंसकवेदका सद्भाव पाया जाता है। परन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिके अपर्याप्त कालमें स्त्री वेदका उदय किसी भी गतिमें संभव नहीं है।

५. योग मार्गणानुसार स्त्रीवेदीके प्रत्यय बताते हुए पत्र २४४ पंक्ति २१-२३ में लिखा है कि असंयत सम्यग्दृष्टियोंमें औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाय योग प्रत्ययोंको कम करना चाहिए; क्योंकि स्त्री-वेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंके अपर्याप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालका अभाव है। यहांपर तो श्री वीरसेन स्वामीने स्वयं इस विषयको बिलकुल स्पष्ट कर दिया है।

६. आहार मार्गणानुसार अनाहारक जीवोंके द्विस्थान प्रकृतियों (वह कर्मप्रकृतियां जो केवल पहले और दूसरे गुणस्थानमें बंधती हैं और जिनकी बन्ध व्युच्छित्ति दूसरे गुणस्थानमें होती है) की प्ररूपणा करते हुए पत्र ३६४ पंक्ति २७में यह कहा है — अनन्तानुबन्धि चतुष्कका बन्ध व उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि अनाहारक जीवोंके अपर्याप्त कालमें दूसरे गुणस्थानसे उपरिम गुणस्थानोंमें स्त्री वेदका उदय नहीं है।

सल का भाग्योदय*

[ले०—विद्याभूषण पं० के० भुजबली शास्त्री, मूडबिद्री]

सल सोमवंशसे संबद्ध यदुकुलका था। यह उत्तरसे आकर शशकपुर वर्तमान मैसूर राज्यान्तर्गत मूडुगेरे तालुकमें अवस्थित अङ्गडिमें रह रहा था। उस समय अङ्गडि एक छोटासा ग्राम था। उसके चारों ओर भयङ्कर जङ्गल था। सल महा-शूर एवं व्यवहार चतुर था। फलत: वह अङ्गडि का रक्षक बनकर जङ्गलसे गांवमें आ, हानि पहुंचाने वाले जङ्गली जानवरोंसे गांववालों की रक्षा करने लगा। इस कार्यके लिये इसे गांववाले प्रतिवर्ष अनाजके रूपमें कुछ कर देने लगे।

इस प्रकार थोड़े समयके बाद सलके पास काफ़ी अनाज एकत्रित हुआ। तब अपने गांवकी रक्षाके लिये इसने एक छोटीसी सेना तैयार की। सल जैन धर्मावलम्बी था। इसके श्रद्धेय गुरु सुदत्त यति थे +। सलको गुरुदेवपर असीम भक्ति थी। एक दिन की बात है कि स्थानीय वसन्तदेवीके मन्दिरमें सल गुरुदेवसे धर्मोपदेश सुन रहा था इसी बीचमें सुदत्त यतिने दूरीपर एक बाघको खरगोशके पीछे दौड़ते हुए देखा। इतने में यति सोचने लगे कि यह दीन खरगोश अवश्य बाघका ग्रास बन जायगा, तत्क्षण ही यति महाराजने धर्म-श्रवणार्थ पासमें बैठे हुए परम भक्त वीर शिरोमणि सलसे कहा कि 'अदं पोय सल' अर्थात् 'सल, उसे मारो'।

बस, गुरुजीका इतना कहना था कि सल हवाकी तरह दौड़कर बाघकी पीठपर चढ़, कटारीकी सहायतासे उसे वश करके गुरुदेवके पादमूलमें ला पटका ÷। शिष्यके इस अद्भुत शौर्यको देखकर गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए। इस उपलक्षमें उत्तरोत्तर उन्नतिकी कांक्षासे

---

* 'Epigraphia carnatica'के आधार पर

+ डा० सालेतोर सागर कट्टे एवं हुंबुचके शिलालेखोंके आधारपर इन सुदत्त यतिका अपर नाम वर्धमान योगीन्द्र बताते हैं। [Mediaeval Jainism] पर वह यह नहीं बता सके कि सुदत्त यतिका नाम वर्धमान योगीन्द्र क्यों पड़ा।

÷ एक शिलालेखसे स्पष्ट है कि सुदत्त, यतिने सलके शौर्यकी परीक्षा करनेकेलिये ही यह घटना घटित की थी। दूसरे एक शिलालेखमें यह भी उपलब्ध है कि स्वयं पद्मावती देवीने सिंहका रूप धारण करके सरदार सलकी परीक्षा करनेमें यति सुदत्तकी सहायता की थी। साथ ही साथ यह भी सिद्ध है कि यति महाराजने ही 'सिंह' सलका राजचिह्न नियतकरके पोय्-सल या होय्सल उसका विजयी नाम घोषित किया था। ['Epigraphia Carnatica' भाग ८ पृष्ठ ५]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यति महाराजने शिष्य सलको गम्भीर आशीर्वाद दिया। पीछे वह घाटोंमें छोटे छोटे नायकोंको जीतकर उस समूचे प्रान्तका शासक बना।

उस जमानेमें जनतामें धर्म-श्रद्धा विशेष थी। मुनिवर सुदत्त वहांकी जनताके लिये साक्षात् ईश्वर थे उनकी आज्ञा विना जनता कोई कार्य नहीं करती थी। सुदत्त यतिमें एक विलक्षण तेज एवं प्रभाव वर्तमान था। इसलिये एक शब्द भी उनके विरुद्ध बोलनेका साहस वहांकी जनतामें नहीं था। फलत: सलको हर प्रकारसे जनतासे सहायता मिलती थी। धीरे धीरे सल अपनी सेनाको बढ़ाकर आस-पासके प्रान्तोंका भी नायक बना।

उस समय सल जिस देशमें था, वह चोल राजाओंके वशमें था। अपनी मातृभूमिको परतन्त्रता से मुक्त करानेके लिये सलने चालुक्योंकी सहायता प्राप्त कर अपने देशको स्वतन्त्र बनाया। बल्कि क्रमश: चोल वर्तमान समूचे मैसूरसे ही खदेड़ दिये गये। होय्सल वंशने लगभग ६० वर्षतक राज्यशासन किया था। इस वंशकी राजधानी पहले वेलूर, और पीछे द्वार समुद्र रहा। इस लिये ये 'द्वारावती पुरवराधीश्वर' कहलाते थे।

निस्सन्देह होय्सलोंका समय जैनधर्मके ह्रासका था। चोल राजाओंके द्वारा जैनराष्ट्र गंगवाड़िका अंत हो चुका था। वैष्णव और शैव आचार्योंने अपने चमत्कारोंसे शासक-वर्गपर अपना अधिकार जमा लिया था। ऐसे विकट समयमें जैन यतिको धर्मप्रभावना और राष्ट्रोद्धारकी सुध आना स्वाभाविक था। राष्ट्रीय जागृतिके अभावमें धर्मोन्नतिका होना कठिन था। इसलिये सिंहनंद्याचार्यके अनुरूप ही श्री सुदत्त यतिको होय्सल राज्यकी स्थापना करना आवश्यक प्रतीत हुआ। डा० भास्करानन्द सालेतोरने इस संबंधमें निम्नप्रकार लिखा है — होयसल राज्य जैनी बुद्धि-कौशलकी दूसरी श्रेष्ठ कृति था। अत: अहिंसाप्रधान जैनधर्मने विजयनगर साम्राज्यके उदय काल तक दो बार देशके राजनैतिक जीवनमें नव जागृतिका संचार किया। जैनाचार्योंने राज्यकी सहायता पानेकेलिये ही इन साम्राज्योंकी स्थापना नहीं की। क्योंकि दक्षिणमें जैनधर्मके केन्द्र पहलेसे विद्यमान थे और उनमें उच्च कोटिके विद्वान् मौजूद थे, जैसे भारतमें विरले ही हुए हैं। प्रत्युत उन्होंने राज्य स्थापनामें सक्रिय भाग इसलिये लिया कि देशकी राजनैतिक विचारधारा ठीक दिशामें बहे, और राष्ट्रीय जीवन उन्नत बने। भारतके इतिहासमें जैनधर्मका महत्व इसी कारण है। होय्सल जैन राज्यसे ही विजयनगरके सम्राटोंको वह सन्देश मिला जिसने भारतके इतिहासमें एक नया गौरवपूर्ण अध्याय ही खोल दिया।* इस वंशमें विनयादित्य, एरेयंग, विष्णुवर्धन + नारसिंह और बल्लाल आदि कई धर्मश्रद्धालु शासक हो गये हैं जिन्होंने अपने शासन कालमें जैनधर्मकी काफी सेवा की थी। सकलचंद्र बालचन्द्र, अभयचन्द्र, रामचन्द्र, शान्तिदेव तथा गोपनन्दी आदि विद्वान् जैनाचार्य उपयुक्त शासकोंके गुरु या प्रबल प्रेरक रहे। आज 'अनेकांत' के विज्ञ पाठकोंके समक्ष होय्सल वंशका इतना ही परिचय दिया गया है।

---

* Mediaeval Jainism, P P. 59-60.

\+ यद्यपि यह पीछे वैष्णव हो गया था, फिर भी अंत तक जैनधर्मपर इनकी सहानुभूति बनी रही।

सद्विचार--मणियां

१-जिसके राग-द्वेष-मोह क्षीण हो गये हैं वह फ़क़ीर कङ्करोंपर जो सुख अनुभव करता है वह चक्रवर्ती भी अपनी पुष्पशैय्यापर नहीं अनुभव कर सकता। —ईसा

२-चक्रवर्तिकी सम्पदा इन्द्रलोकके भोग।
काकवीट सम गिनत हैं वीतरागके लोग॥
—जैनवाङ्मय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ वाग्भट्ट और उनकी कृतियां

[लेखक—पण्डित परमानन्द जैन शास्त्री]

वाग्भट नामके अनेक विद्वान हुए हैं। उनमें अष्टाङ्गहृदय नामक वैद्यक ग्रन्थके कर्ता वाग्भट सिंहगुप्तके पुत्र और सिन्धुदेशके निवासी थे। नेमिनिर्वाण काव्यके कर्ता वाग्भट प्राग्वाट या पोरवाड़वंशके भूषण तथा छाहड़के पुत्र थे। और वाग्भट्टालङ्कार नामक ग्रन्थके कर्ता वाग्भट सोमश्रेष्ठीके पुत्र थे। इनके अतिरिक्त वाग्भट नामके एक चतुथ विद्वान और हुए हैं जिनका परिचय देनेके लिये ही यह लेख लिखा जाता है।

ये महाकवि वाग्भट नेमिकुमारके पुत्र थे; व्याकरण छन्द, अलङ्कार, काव्य, नाटक, चम्पू और साहित्यके मर्मज्ञ थे; कालीदास, दण्डी, और वामन आदि विद्वानोंके काव्य-ग्रन्थोंसे खूब परिचित थे, और अपने समयके अखिल प्रज्ञालुओंमें चूड़ामणि थे, तथा नूतन काव्य रचना करनेमें दक्ष थे। * इन्होंने अपने पिता नेमिकुमारको महान् विद्वान् धर्मात्मा और यशस्वी बतलाया है और लिखा है कि वे कौन्तेय कुलरूपी कमलोंको विकसित करने वाले अद्वितीय भास्कर थे। और सकलशास्त्रोंमें पारङ्गत तथा सम्पूर्ण लिपि भाषाओंसे परिचित थे और उनकी कीर्ति समस्त कवि-कुलोंके मान, सन्मान और दानसे लोकमें व्याप्त हो रही थी। और मेवाड़देशमें प्रतिष्ठित भगवान पार्श्वनाथ जिनके यात्रा महोत्सवसे उनका अद्भुत यश अखिल विश्वमें विस्तृत हो गया था। नेमिकुमारने राहडपुरमें * भगवान नेमिनाथका और नलोटकपुरमें बाईस देवकुलकाओं सहित भगवान आदिनाथका विशाल मन्दिर बनवाया था +। नेमिकुमारके पिताका नाम 'मक्कलप' और माताका नाम महादेवी था, इनके राहड और नेमिकुमार दो पुत्र थे, जिनमें नेमिकुमार लघु और राहड ज्येष्ठ थे। नेमिकुमार अपने ज्येष्ठ भ्राता राहडके परमभक्त थे और उन्हें आदर तथा प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे। राहडने भी उसी नगरमें भगवानआदिनाथके मन्दिरकी दक्षिण दिशामें बाईस जिन-मन्दिर बनवाए थे, जिससे उनका यशरूपी चन्द्रमा जगतमें पूर्ण हो गया था—व्याप्त हो गया था÷।

कवि वाग्भट्ट-भक्तिरसके अद्वितीय प्रेमी थे, उनकी स्वोपज्ञ काव्यानुशासनवृत्तिमें आदिनाथ नेमिनाथ और भगवान पार्श्वनाथका स्तवन किया

*. नव्यानेकमहाप्रबन्धरचनाचातुर्यविस्फूर्जित-
स्फारोदारयशः प्रचारसततव्याकीर्णविश्वत्रयः।
श्रीमन्नेमिकुमार-सूरिरखिलप्रज्ञालुचूडामणिः।
काव्यानामनुशासनं वरमिदं चक्रे कविर्वाग्भटः॥

छन्दोनुशासनकी अन्तिम प्रशस्तिमें भी इस पद्यके ऊपरके तीन चरण ज्योंके त्यों रूपसे पाये जाते हैं। सिर्फ चतुर्थ चरण बदला हुआ है, जो इस प्रकार है—

'छन्दः शास्त्रमिदं चकार सुधियामानन्दकृद्वाग्भटः'।

*. जान पड़ता है कि 'राहडपुर' मेवाड़देशमें ही कहीं नेमिकुमारके ज्येष्ठ भ्राता राहडके नामसे बसाया गया है।

+. देखो, काव्यानुशासनटीकाकी उत्थानिका पृष्ठ १

÷. नाभेयचैत्यसद्ने दिशि दक्षिणस्यां।
द्वाविंशतिं विदधता जिनमन्दिराणि।
मन्ये निजाग्रजवर प्रभु राहडस्य।
पूर्णीकृतो जगति येन यशः शशाङ्कः।
काव्यानुशासन पृष्ठ ३४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया है। जिससे यह सम्भव है कि इन्होंने किसी स्तुति ग्रन्थकी भी रचना की हो; क्योंकि रसोंमें रति (शृङ्गार) का वर्णन करते हुए देव-विषयक रतिके उदाहरणमें निम्न पद्य दिया है—

नो मुक्त्यै स्पृहयामि विभवैः कार्यं न सांसारिकैः,
किंत्वायोज्य करौ पुनरिदं त्वामीशमभ्यर्चये।
स्वप्ने जागरणे स्थितौ विचलने दुःखे सुखे मंदिरे,
कान्तारे निशिवासरे च सततं भक्तिर्ममास्तु त्वयि।

इस पद्यमें बतलाया है कि हे नाथ ! मै मुक्तिपुरी की कामना नहीं करता और न सांसारिक कार्योंके लिये विभव (धनादि सम्पत्ति) की ही आकांक्षा करता हूं; किन्तु हे स्वामिन् हाथ जोड़कर मेरी यह प्रार्थना है कि स्वप्नमें, जागरणमें, स्थितिमें, चलनेमें दुःख-सुखमें, मन्दिरमें, वनमें, रात्रि और दिनमें निरन्तर आपकी ही भक्ति हो।

इसी तरह कृष्ण नील वर्णोंका वर्णन करते हुए राहडके नगर और वहां प्रतिष्ठित नेमिजिनका स्तवन-सूचक निम्न पद्य दिया है—

सजलजलदनीलाभाति यस्मिन्वनाली,—
मरकतमणिकृष्णो यत्र नेमि जिनेन्द्रः।
विकचकुवलयालि श्यामलं यत्सरोम्भः—
प्रमुदयति न कांस्कांस्तत्पुरं राहडस्य ॥

इस पद्यमें बतलाया है कि जिसमें वन-पंक्तियां सजलमेघके समान नीलवर्ण मालूम होती हैं और जिस नगरमें नीलमणि सदृश कृष्णवर्ण श्री नेमि जिनेन्द्र प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें तालाब विकसित कमलसमूहसे पूरित हैं वह राहडका नगर किन किनको प्रमुदित नहीं करता।

महाकवि वाग्भट्टकी इस समय दो कृतियां उपलब्ध हैं—छन्दोनुशासन और काव्यानुशासन। उनमें छन्दोनुशासन काव्यानुशासनसे पूर्व रचा गया है; क्योंकि काव्यानुशासनकी स्वोपज्ञवृत्तिमें स्वोपज्ञ-छन्दोनुशासनका उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसमें छन्दोंका कथन विस्तारसे किया गया है। अतएव यहांपर नहीं कहा जाता *।

छन्दोनुशासन—

जैनसाहित्यमें छन्दशास्त्रपर 'छन्दोनुशासन, + स्वयम्भूछन्द, * छन्दोकोष, ÷ और प्राकृतपिङ्गल ★ आदि अनेक छन्द ग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें प्रस्तुत छन्दोनुशासन सबसे भिन्न है। यह संस्कृत भाषाका छन्द ग्रन्थ है और पाटनके श्वेताम्बरीय ज्ञानभंडारमें

---

* 'अयं च सर्वप्रपञ्चः श्रीवाग्भटाभिधस्वोपज्ञ छन्दोनुशासने प्रपञ्चित इति नात्रोच्यते।'

+ यह छन्दोनुशासन जयकीर्तिके द्वारा रचा गया है। इसे उन्होंने मांडव्व, पिंगल, जनाश्रय, सेतव, पूज्यपाद (देवनंदी) और जयदेव आदि विद्वानोंके छन्द ग्रन्थोंको देखकर बनाया गया है। यह जयकीर्ति अमलकीर्तिके शिष्य थे। सम्वत् ११६२ में योगसारकी एक प्रति अमलकीर्तिने लिखवाई थी इससे जयकीर्ति १२वीं शताब्दीके उत्तरार्ध और १३वीं शताब्दीके पूर्वार्धके विद्वान् जान पड़ते हैं। यह ग्रन्थ जैसलमेरके श्वेताम्बरीय ज्ञानभण्डारमें सुरक्षित है। देखो गायकवाड़ संस्कृतसीरीजमें प्रकाशित जैसलमेर भाण्डागारीय ग्रन्थानां सूची।

* यह अपभ्रंशभाषाका महत्वपूर्ण मौलिक छन्द ग्रन्थ है इसका सम्पादन एच० डी० वेलंकरने किया है। देखो बम्बईयूनिवर्सिटी जनरल सन् १९३३ तथा रायल-एशियाटिक सोसाइटी जनरल सन् १९३५

÷ यह रत्नशेखरसूरिद्वारा रचित प्राकृतभाषाका छन्दकोश है।

★ पिंगलाचार्यके प्राकृतपिंगलको छोड़कर, प्रस्तुत पिंगल ग्रन्थ अथवा 'छन्दो विद्या' कविवर राजमलकी कृति हैं जिसे उन्होंने श्रीमालकुलोत्पन्न वणिकपति राजा भारमल्लके लिये रचा था। इस ग्रन्थमें छन्दोंका निर्देश करते हुए राजा भारमल्लके प्रताप यश और वैभव आदिका अच्छा परिचय दिया गया है। इन छन्द ग्रन्थोंके अतिरिक्त छन्दशास्त्र वृत्तरत्नाकर और श्रुतबोध नामके छन्द ग्रन्थ और हैं जो प्रकाशित हो चुके हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताडपत्रपर लिखा हुआ विद्यमान है*। उसकी पत्रसंख्या ४२ और श्लोकसंख्या ५४० के करीब है और जो स्वोपज्ञवृत्ति या विवरणसे अलंकृत है। इस ग्रन्थका मङ्गल पद्य निम्न प्रकार है—

विभुं नाभेयमानम्य छन्दसामनुशासनम्।
श्रीमन्नेमिकुमारस्यात्मजोऽहं वच्मि वाग्भटः

यहां मङ्गल पद्य कुछ परिवर्तनके साथ काव्यानुशासनकी स्वोपज्ञवृत्तिमें भी पाया जाता है, उसमें 'छन्दसामनुशासनं' के स्थानपर 'काव्यानुशासनम्' दिया हुआ है।

यह छन्दग्रन्थ पांच अध्यायोंमें विभक्त है, संज्ञाध्याय १, समवृत्ताख्य २, अर्धसमवृत्ताख्य ३, मात्रासमक ४, और मात्रा छन्दक ५। ग्रन्थ सामने न होनेसे इन छन्दोंके लक्षणादिका कोई परिचय नहीं दिया जा सकता और न ही यह बतलाया जा सकता है कि ग्रन्थकारने अपनी दूसरी किन किन रचनाओंका उल्लेख किया है।

काव्यानुशासनकी तरह इस ग्रन्थमें भी राहड और नेमिकुमारकी कीर्तिका खुला गान किया गया है और राहडको पुरुषोत्तम तथा उनकी विस्तृत चैत्यपद्धतिको प्रमुदित करनेवाली प्रकट किया है। यथा—

पुरुषोत्तम राहडप्रभो कस्य न हि प्रमदं ददाति सद्यः
वितता तव चैत्य पद्धतिर्वातचलध्वजमालभारिणी।

और अपने पिता नेमिकुमारकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'घूमनेवाले भ्रमरसे कम्पित कमलके मकरन्द (पराग) समूहसे पूरित, भडौंच अथवा भृगुकच्छनगरमें नेमिकुमारकी अगाध वाकड़ी शोभित होती है। यथा—

परिभमिरभमरकंपिरसररूहमयरंदपुंजपुंजरिआ।
वावी सहइ अगाहा नेमिकुमारस्स भरुअच्छे॥

इस तरह यह छन्दग्रन्थ बड़ा ही महत्वपूर्ण जान पड़ता है समाजको चाहिये कि वह इस अप्रकाशित छन्दग्रन्थको प्रकाशित करनेका प्रयत्न करे।

काव्यानुशासन—

काव्यानुशासन नामका प्रस्तुत ग्रन्थ मुद्रित होचुका है। इसमें काव्य सम्बन्धि विषयोंका— रस अलङ्कार छन्द और गुण दोष आदिका-कथन किया गया है। इसकी स्वोपज्ञवृत्तिमें उदाहरण स्वरूप विभिन्न ग्रंथोंके अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं जिनमें कितने ही पद्य ग्रन्थकर्ताके स्वनिर्मित भी होंगे, परन्तु यह बतला सकना कठिन है कि वे पद्य इनके किस ग्रन्थके हैं। समुद्धृत पद्योंमें कितने ही पद्य बड़े सुन्दर और सरस मालूम होते हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये उनमेंसे दो तीन पद्य नीचे दिये जाते हैं।

कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी हुं हुं प्रतापी प्रिये
हुं हुं तर्हि विमुञ्च कातरमते शौर्यावलेपक्रियां।
मोहोऽनेन विनिर्जितः प्रभुरसौ तत्किङ्कराः के वयं
इत्येवं रतिकामजल्पविषयः सोऽयं जिनः पातु वः

एक समय कामदेव और रति जङ्गलमें विहार कर रहे थे कि अचानक उनकी दृष्टि ध्यानस्थ जिनेन्द्रपर पड़ी, उनके रूपवान् प्रशान्त शरीरको देखकर कामदेव और रतिका जो मनोरञ्जक संवाद हुआ है उसीका चित्रण इस पद्यमें किया गया है। जिनेन्द्रको मेरुवत् निश्चल ध्यानस्थ देखकर रति कामदेवसे पूछती है कि हे नाथ! यह कौन है? तब कामदेव उत्तर देता है कि यह जिन हैं,—राग-द्वेषादि कर्मशत्रुओंको जीतने वाले हैं—पुनः रति पूछती है कि यह तुम्हारे वशमें हुए, तब कामदेव उत्तर देता है कि हे प्रिये! यह मेरे वशमें नहीं हुए; क्योंकि यह प्रतापी हैं। तब फिर रति पूछती है यदि यह तुम्हारे वशमें नहीं हुए तो तुम्हें 'त्रिलोकविजयी' पनकी शूरवीरताका अभिमान छोड़ देना चाहिये। तब कामदेव रतिसे पुनः कहता है कि इन्होंने मोह राजाको जीत लिया है जो हमारा प्रभु है, हम तो उसके किङ्कर हैं। इस तरह रति और कामदेवके संवाद-विषयभूत यह जिन तुम्हारा संरक्षण करें।

* See Patan Catalague of Manuscripts p. 117

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शठकमठ विमुक्ताग्रावसंघातघात-,
व्यथितमपिमनो न ध्यानतो यस्य नेतुः।
अचलदचलतुल्यं विश्वविश्वैकधीरः,
स दिशतु शुभमीशः पार्श्वनाथो जिनो वः।

इस पद्यमें बतलाया है कि दुष्ट कमठके द्वारा मुक्त मेघसमूहसे पीड़ित होते हुए जिनका मन ध्यानसे जरा भी विचलित नहीं हुआ वे मेरुके समान अचल और विश्वके अद्वितीय धीर, ईश पार्श्वनाथ जिन तुम्हें कल्याण प्रदान करें।

इसी तरह 'कारणमाला'के उदाहरण स्वरूप दिया हुआ निम्न पद्य भी बड़ा ही रोचक प्रतीत होता है। जिसमें जितेन्द्रियताको विनयका कारण बतलाया गया है और विनयसे गुणोत्कर्ष, गुणोत्कर्षसे लोकानुरञ्जन, और जनानुरागसे सम्पदाकी अभिवृद्धिका होना सूचित किया है, वह पद्य इस प्रकार है—

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं,
गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते।
गुणप्रकर्षेणजनोऽनुरज्यते,
जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः॥

इस ग्रन्थकी स्वोपज्ञवृत्तिमें कविने अपनी एक कृतिका 'स्वोपज्ञ ऋषभदेव महाकाव्ये वाक्यके साथ उल्लेख किया है और उसे 'महाकाव्य' बतलाया है, जिससे वह एक महत्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ जान पड़ता है इतना ही नहीं किन्तु उसका निम्न पद्य भी उद्धृत किया है—

यत्पुष्पदन्त-मुनिसेन-मुनीन्द्रमुख्यैः,
पूर्वैंकृतं सुकविभिस्तदहं विधित्सुः।
हास्यास्य कस्य ननु नास्ति तथापिसन्तः,
शृण्वन्तु कञ्चनममापि सुयुक्ति सूक्तम्।

इसके सिवाय, कविने भव्यनाटक और अलंकारादि काव्य बनाये थे। परन्तु वे सब अभी तक अनुपलब्ध हैं, *मालूम नहीं, कि वे किस शास्त्रभण्डारकी* काल कोठरीमें अपने जीवनकी सिसकियाँ ले रहे होंगे।

सम्प्रदाय और समय—

ग्रन्थकर्ताने अपनी रचनाओंमें अपने सम्प्रदायका कोई समुल्लेख नहीं किया और न यही बतलानेका प्रयत्न किया है कि उक्त कृतियां कब और किसके राज्यकालमें रची गई हैं? हां, काव्यानुशासनवृत्तिके ध्यानपूर्वक समीक्षणसे इस बातका अवश्य आभास हो जाता है कि कविका सम्प्रदाय 'दिगम्बर' था; क्योंकि उन्होंने उक्त वृत्तिके पृष्ठ ६ पर विक्रमकी दूसरी तीसरी शताब्दिके महान् आचार्य समन्तभद्रके 'बृहत्-स्वयम्भू स्तोत्रके द्वितीय पद्यको 'आगम आप्तवचनं यथा' वाक्यके साथ उध्दृत किया है *। और पृष्ठ ५ पर भी 'जैनं यथा' वाक्यके साथ उक्त स्तवनका 'नयास्तव स्यात्पदसत्यलांछिता रसोपविद्धा इव लोह धातवः। भवन्त्यमी प्रेतगुणा यतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणिता हितैषिणः॥" यह ६५वां पद्य समुद्धृत किया है। इसके सिवाय पृष्ठ १५ पर ११ वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य वीरनन्दीके 'चन्द्रप्रभचरित' का आदि मङ्गलपद्य + भी दिया है, और पृष्ठ १६ पर सज्जन-दुर्जन चिन्तामें 'नेमिनिर्वाण काव्यके' प्रथम सर्गका निम्न२० वां पद्य उद्धृत किया है—

गुणप्रतीतिः सुजनाज्ञस्य,
दोषेष्ववज्ञा खलजल्पितेषु।
अतोध्रुवं नेह मम प्रबन्धे,
प्रभूतदोषेऽप्ययशोवकाशः॥

और उसी १६वें पृष्ठमें उल्लिखित 'उद्यानजलकेलि मधुपानवर्णनं नेमिनिर्वाण राजीमती परित्यागादी' इस वाक्यके साथ नेमिनिर्वाण और राजीमती परि—

* प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषुः शशास कृष्यादिषुकर्मसु प्रजाः। प्रबुद्धतत्वः पुनरद्भुतोदयो ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः॥२॥

+ श्रियं क्रियाद्यस्य सुरागमे नटत्सुरेंद्रनेत्रप्रतिबिंबलांछिता। सभा बभौ रत्नमयी महोत्पलैः कृतोपहारेव स वोग्रजो जिनः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्याग नामके दो ग्रन्थोंका समुल्लेख किया है। उनमेंसे नेमिनिर्वाणके ८ वें सर्गमें जलक्रीड़ा और १०वें सर्गमें मधुपानसुरतका वर्णन दिया हुआ है। हां, 'राजीमती परित्याग' नामका अन्य कोई दूसरा ही काव्यग्रन्थ है जिसमें उक्त दोनों विषयोंके कथन देखनेकी सूचना की गई है। यह काव्यग्रन्थ सम्भवत: पं० आशाधर जीका 'राजमती विप्रलम्भ' या परित्याग जान पड़ता है; क्योंकि उसी सोलहवें पृष्ठ पर 'विप्रलम्भ वर्णनं राजमती परित्यागादौ वाक्यके साथ उक्त ग्रन्थका नाम 'राजीमती परित्याग' सूचित किया है। जिससे स्पष्ट मालूम होता है कि उक्त काव्यग्रन्थमें 'विप्रलम्भ' विरह का वर्णन किया गया है। विप्रलम्भ और परित्याग शब्द भी एकार्थक है। यदि यह कल्पना ठीक है तो प्रस्तुत ग्रन्थका रचना काल १३ वीं शताब्दीके विद्वान् पं० आशाधर जीके बादका हो सकता है।

इन सब ग्रन्थोल्लेखोंसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि ग्रन्थकर्ता उल्लिखित विद्वान् आचार्योंका भक्त और उनकी रचनाओंसे परिचित तथा उन्हींके द्वारा मान्य दिगम्बरसम्प्रदायका अनुसर्ता अथवा अनुयायी था। अन्यथा समन्तभद्राचार्यके उक्त स्तवन पद्यके साथ भक्ति एवं श्रद्धावश 'आगम और आप्तवचन' जैसे विशेषणोंका प्रयोग करना सम्भव नहीं था।

अब रही 'रचना समयंकी बात' सो इनका समय बिक्रमकी १४ वीं शताब्दीका जान पड़ता है; क्योंकि काव्यानुशासनवृत्तिमें इन्होंने महाकवि दण्डी वामन और वाग्भटादिकके द्वारा रचेगये दश काव्य-गुणोंमेंसे सिर्फ माधुर्य ओज और प्रसाद ये तीन गुण ही माने हैं और शेष गुणोंका इन्हीं तीनमें अन्तर्भाव किया है ÷। इनमें वाग्भट्टालङ्कारके कर्ता वाग्भट विक्रमकी १२ वीं शताब्दीके उत्तरार्धके विद्वान् हैं। इससे प्रस्तुत वाग्भट वाग्भट्टालङ्कारके कर्तासे पश्चात् वर्ति है यह सुनिश्चित है। किन्तु ऊपर १३ वीं शताब्दीके विद्वान पं० आशाधर जीके 'राजीमती विप्रलम्भ या परित्याग' नामके ग्रन्थका उल्लेख किया गया है जिसके देखनेकी प्रेरणा की गई है। इस ग्रन्थोल्लेख से इनका समय तेरहवीं शताब्दीके बादका सम्भवत: विक्रमकी १४ वीं शताब्दीका जान पड़ता है।

वीरसेवा मन्दिर ता० १५-२-४८

÷ इति दण्डिवामनवाग्भटादिप्रणीता दशकाव्यगुणाः। वयं तु माधुर्यौजप्रसादलक्षणास्त्रीनेव गुणा मन्यामहे, शेषस्तेष्वेवान्तर्भवन्ति। तद्यथा— माधुर्ये कान्तिः सौकुमार्य च, औजसि श्लेषः समाधिरुदारता च। प्रसादेऽर्थव्यक्तिः समता चान्तर्भवति। काव्यानुशासन २, ३१

महात्मा गान्धीके निधनपर शोक-प्रस्ताव !

"महात्मागांधीकी तेरहवीं दिवसपर २२ फरवरी १९४८ को वीरसेवामन्दिरमें श्रीमान् पण्डित जुगल-किशोरजी मुख्तार सम्पादक 'अनेकान्त' की अध्यक्षता में शोक-सभा की गई जिसमें विविध वक्ताओंने गान्धीजीके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलियां प्रकट कीं और उपस्थित जनताने निम्न शोक-प्रस्ताव पास किया—

विश्वके महान् मानव, मानव समाजके अनन्य सेवक अहिंसा-सत्यके पुजारी और भारतके उद्धारमें सविशेषरूपसे संलग्न, उसकी महाविभूति महात्मा मोहनदास गांधीकी ३० जनवरीको होनेवाली निर्मम हत्याका दु:समाचार सुना है और साथही यह मालूम हुआ है कि उसके पीछे कोई भारी षडयन्त्र है जो देशमें फासिस्टवादका प्रचार कर तबाह व बर्बाद करना चाहता है तबसे वीरसेवामन्दिरका, जो कि रिसर्च इन्स्टियूट और साहित्य सेवाके रूपमें जैन समाजकी एक प्रसिद्ध प्रधान संस्था है, सारा परिवार दु:खसे पीडित और शोकाकुल है और अपनी उस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेदनाको मन्दिरसे प्रकाशित होने वाले 'अनेकान्त' पत्रकी जनवरी मासकी किरणमें भारतकी महाविभूति का दुःसह वियोग' शर्षिकके नीचे कुछ प्रकट भी कर चुका है। आज महात्माजीकी १३ वींके दिन जबकि उनके शरीरकी पवित्र भस्म नदियोंमें प्रवाहितकी जायगी, नगरकी सारी जैन जनता वीरसेवामन्दिरमें एकत्र हुई, और उसने महात्माजीके इस आकस्मिक निधनपर अपना भारी दुःख तथा शोक प्रकट किया। साथही यह स्वीकार किया कि आपभी महावीरके *अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह*वाद जैसे सिद्धान्तोंकी मौलिक शिक्षाओंका व्यापक प्रचार और प्रसार करने वाले एक सन्तपुरुष थे। देश आपके उपकारों और सेवाओंका बहुत बड़ा ऋणी है आपके इस निधनसे भारतको ही नहीं बल्कि सारे विश्वको भारी क्षति पहुंची है, जिसकी शीघ्र पूर्ति होना असंभव जान पड़ता है। अतः वीरसेवामन्दिरका समस्त परिवार एकत्रित जैन जनता और जैनेतर जनताके साथ स्वर्गीय महात्माजीकी अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हुआ उनकी आत्माके लिये परलोकमें सुख-शान्ति की कामना करता है और उनके समस्त परिवारके प्रति अपनी हार्दिक समवेदना व्यक्त करता है। साथ ही यह दृढ़भावना और भगवान महावीरसे प्रार्थना भी करता है कि पं० जवाहरलाल नेहरु सरदार बल्लभ भाई पटेल, डा० राजेन्द्रकुमार और मौलाना अब्बुलकलाम आज़ाद जैसे देशके वर्तमान नेताओं को जिनके ऊपर महात्माजी अपने मिशनका भार छोड़ गये हैं वह अपार बल और साहस प्राप्त होवे जिससे वे राष्ट्रके समुचित निर्माण और उत्थानके कार्यमें पूरी तरह समर्थ हो सकें।

गाँधीकी याद !

[लेखकः—मु० फ़ज़लुलरहमान जमाली, सरसावी]

वह देशका रहबर था, वह महबूबे नज़र था ! सच पूछो तो वह हिन्दका मुमताज़ बशर था !!
हिन्दूको अगर जान तो मुस्लिमका जिगर था ! गङ्गाकी अगर मौज तो जमनाकी लहर था !!
वह सो गया सोया है मगर सबको जगाकर !
रूपोश हुआ पर्देमें, वह पर्दा उठाकर !!

तस्वीरे मुहब्बत था, अहिंसाका वह पैकर ! बहता हुआ वह रहम व हमीयतका समन्दर !!
ऐ आह ! कि वह छुप गया ख़ुरशैद मनव्वर ! हर मुल्कमें अन्धेर तो मातम हुआ घर घर !!
तबक़ा यह उलट जाय तो कुछ दूर नहीं है !
गान्धीकी मगर रूहको मंज़ूर नहीं है !!

अब कौन है इस डूबती कश्तीका सहारा ! उन लोगोंका याँ दौर है जो हैं सितम आरा !!
यह सदमा तो दिलको नहीं होता था गवारा ! क्या डूब चुका हिन्दकी किस्मतका सितारा !!
उम्मीद बढ़ी दिलकी लगे होश ठिकाने !
अब दूसरा गांधी किया 'नहरू' को खुदाने !!

जां देके बड़े कामको अंजाम दिया है ! कीमतको अहिंसाकी अदा करके रहा है !!
गाँधी जिया जिस तरहसे यूं कौन जिया है ! नाथूने मगर हिन्दको बदनाम किया है !!
जो शमा हिदायत थी उसे आह बुझा दी !
ज़ालिमने लगी आगमें और आग लगा दी * !!

* यह उर्दू कविता १२ फरवरी सन् १९४८ को सरसावाकी सार्वजनिक शोकसभामें पढ़ी गई और पसन्दकी गई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

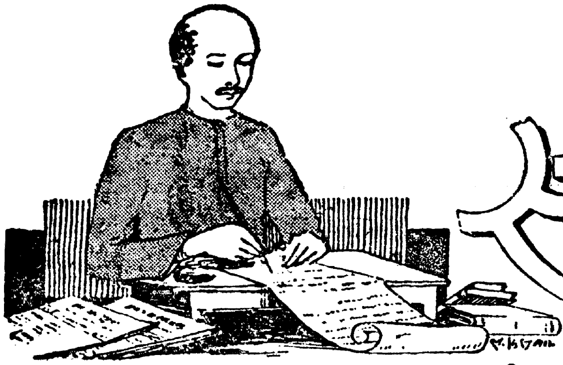

सम्पादकीय विचारधारा

१—राष्ट्रपिताको श्रद्धांजलि—

राष्ट्रपिताके निधनपर हम क्या श्रद्धांजलि अर्पित करें ? हम तो उनकी भेड़ थे। जिधरको संकेत किया बढे, जब रोका रुके, पर्वतोंपर चढ़नेको कहा चढे, और गिरनेको कहा तो गिरे। श्रद्धाञ्जलि तो हमारी पीढ़ी दर पीढ़ी अर्पित करेगी जिसे स्वतन्त्र भारतमें जन्म लेनेका अधिकार बापूने प्रदान किया है।

१५ अगस्तको जब समस्त भारत स्वतन्त्रता समारोहमें लीन था, तब हमारा राष्ट्रपिता कलकत्तेमें बैठा साम्प्रदायिक विष पी रहा था। समग्र भारतकी इच्छा उसे अभिशिक्त करनेकी थी, परन्तु वह कलकत्तेसे हिला नहीं। और उसने सांकेतिक भाषामें सावधान कर दिया कि जिस समुद्रमन्थनसे स्वतंत्रता-सुधा निकली है, उसीसे सांप्रदायवाद-हलाहल भी निकल पड़ा है। यह मुझे चुपचाप पीने दो। इसकी बूंद भी बाहर रही तो सुधाको भी गरल बना देगी। और सचमुच उस हर्षोन्मादकी छीना-झपटीमें हमारे हाथों जो गरल छलकी तो वह पानीमें मिट्टीके तेलकी तरह सर्वत्र फैल गई। और दूसरे पदार्थोंके सम्मिश्रणसे उसका ऐसा विकृतरूप हुआ कि उसके पानसे न तो हम मरते ही हैं और न जीते ही हैं। एड़ियां रगड़ रगड़ कर छटपटा रहे हैं फिर भी प्राण नहीं निकल रहे हैं।

इस सांघातिक महाव्याधिसे छुटकारा दिलाने राष्ट्रपिता दिल्ली पहुंचे, उपचार चल ही रहा था कि इस रोगसे ग्रसित कुछ अभागोंको सन्निपात हो गया। और उसी सन्निपातके वेगमें उन्होंने राष्ट्रपिताका वध कर डाला। पुत्र ही पिताके घातक हो गये।

आर्यकुलमें आश्चर्य जनक घटनाएँ मिलती हैं। पुत्रने माताका वध किया, माताने पुत्रोंको जङ्गलोंकी खाक छाननेको मजबूर किया। भाईने बहनके बालकोंका वध किया। देवरने भाभीको नग्न करनेका बीड़ा उठाया, शिष्यने गुरुको मारा. मित्रने मित्रकी बहनका अपहरण किया। नारियोंने पतियोंके और पतियोंने नारियोंके वध किये। परन्तु पुत्रोंने पिताका वध किया हो ऐसा उदाहरण आर्य, अनार्य, देश, विदेशमें कहीं नहीं मिलता। गोडसेने यह कृत्य करके कलङ्ककी इस कमीको पूर्ण कर दिया है।

एकही भारतमें दो नारियोंको प्रसव-पीड़ा हुई। एकने बापूको और एकने गोडसेको जन्म दिया। कितना आकाश-पातालका अंतर है इस जन्म देनेमें। एकने वह अमर ज्योति दी जिससे समस्त विश्व दीप्त हो उठा, दूसरीने वह राहू प्रसव किया जिसके कारण आज भारत तिमिराछन्न है। एटम बमके जनकसे अधिक निकृष्ट निकली यह नारी। क्या विधाता इस नारीको वन्ध्या बनानेमें भी समर्थ न हो सका।

गोडसेके इस कृत्यने उसके वंशपर, जातिपर, प्रान्तपर कालिमा पोत दी है। गोडसे वंशकी कन्याएँ वरोंकी खोजमें भटकती फिरेंगी युवकोंकी ओर लालायित दृष्टिसे देखेंगी। परन्तु युवक क्या बूढे भी उस ओर नहीं थूकेंगे। सर्वत्र थू थू दुर दुर लानत और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फटकार बरसेगी। नाथू गोडसे पर थूकना भी लोग पसन्द नहीं करेंगे। कौन ऐसे वंशपर थूक कर अपने थूकको अपवित्र करेगा ?

ओ दुर्दैव ! तू अपने भयानक चक्रमें फंसाकर हमारे समुचित अपराधोंकी सज़ा देना। पर हमारे देशमें, प्रान्तमें, समाजमें, वंशमें, ऐसा कलंकी उत्पन्न न करना ! भले ही हमारा पुरुषत्व और नारियोंका जनन अधिकार छीन लेना; परन्तु हमें इस अभिशापसे बचाना। दैव ! हम तेरे पांव पड़ते हैं, हमने इतना दीन हो कर त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्रसे भी कभी कुछ न मांगा, आज हम गिड़गिड़ाकर यह भीख मांगते है कि हमारे देशमें फिर ऐसा कलङ्की उत्पन्न न करना।

बापूकी मृत्यु इस शानसे हुई जिसके लिये बड़े २ महारथी तरसते है। मगर नसीब नहीं होती —
जो मर जावे खटिया पड़कर उसके जीवनको धिक्कार।

बचपनमें आल्हाखण्डका यह पद्यांश सुना और अभी तक विस्मरण नहीं हुआ। विस्मरण होनेकी चीज भी नहीं है। बचपनसे ही देखता आ रहा हूं कि सचमुच अधमसे अधम, गये बीतेसे गया बीता भी खटियापर नहीं मरना चाहता, वह भी मरनेसे पूर्व खटियासे पृथ्वीपर ले लिया जाता है। रणक्षेत्र या कार्यक्षेत्र धर्मक्षेत्र न सही पृथ्वीपर लेटकर प्राण देनेसे उसका तसव्वुर तो नेत्रोंमें रहता है। जिसका जीवन इतना संघर्षमय और व्यस्त हो, उसे खटियापर मरनेका अवकाश कहां ? वह तो चलते-चलते, ईश्वर नाम लेते-लेते गया। एक नहीं, दो नहीं, चार-चार गोली सीनेमें मर्दाना वार खाकर भी तो गिरा आगेकी ओर। जिसने जीवनमें कभी पीछे हटना नहीं जाना वह अन्तिम समयमें भी पीछे क्यों गिरता ? कर्तव्य पथपर अग्रसर, जिह्वापर भगवानका नाम, हृदयमें विश्व-कल्याणकी भावना, मुखपर क्षमाकी अपूर्व आभा—बताइये तो ऐसी शहादतका दर्जा बापूके अतिरिक्त और किसको मयस्सर हुआ है ?

अहिंसाका पुजारी हिंसकद्वारा शहीद किया गया, पर, हिंसक क्या सचमुच विजय पा सका। विजय तो बापूके ही हाथ लगी। वह क्षमाका अवतार मरते-मरते अभय दे गया, हिंसासे भी खिलखिलाकर छेड़कर गया।

और हिंसाके भक्त जो दिन-रात लाठी-बर्छे दिखाते फिरते थे। आसुरी बलपर जिन्हें घमण्ड था, वही आज प्राणभयसे कुत्तोंकी तरह भागते फिर रहे हैं। जो निशस्त्र गान्धीका मखौल उड़ाते थे, वे आज भेड़ोंकी तरह मिमया रहे हैं। एकसे भी सुर्खरू होकर जनताके सामने आते नहीं बना।

बापूके अहिंसक अनुयाइयोंपर गवर्नमैण्ट भी हाथ डालते हुए सहमती थी। गिरफ्तार होते थे तो जेलखानोंको इस शानसे जाते थे कि देखनेवालोंको उनके इस बांधपनपर गर्व होता था। शत्रु भी हृदयसे इज्जत देते थे। इसके विपरीत आसुरी बल और हिंसाके गीत गानेवालोंका जो हाल हुआ वह दयनीय है।

राष्ट्रपिताने अपनी शानके योग्य ही मृत्युका वरण किया, परन्तु हमें रह-रहकर एक कलमलाहट बेचैन किये देती है। हजारों बर्षकी दुद्धर तपश्चर्याके फलस्वरूप हमें जो निधि प्राप्त हुई, उसे हम सम्हालकर न रख सके। हम ऐसे बावले हो गये कि खुलेआम उसे रखकर खुर्राटे लेने लगे। हम अपनी इस मूर्खतापर उसी तरह उपहासास्पद हो गये हैं जिस तरह एक मजदूर डर्बीकी लाटरीको बांसमें रखे घूमता था। और लाटरी पानेकी खुशीमें उसने बांसको समुद्रमें इस खयालसे फैंक दिया था कि जब इतना रुपया मिलेगा तो बांसको रखकर क्या करूंगा ?

मृत्यु-महोत्सव—

जैनशास्त्रोंमें जितना महत्व मृत्युमहोत्सवको दिया गया, है उसमें भी कई गुणा अधिक महत्व हमने उसे अपने जीवनमें दे रक्खा है। मृत्यु-समय हँसते हुए प्राण-त्याग देना, ममता-मोह लेशमात्र भी न रहना और मृत्यु-वेदनाको साम्यभावसे सहन करने आदिके उदाहरण साधु महात्मा, शूरवीर, धर्मनिष्ठ एव, देशभक्तों आदिके मिलते हैं। सर्वसाधारणसे ऐसी आशा बहुत कम होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर, हमारी समाजमें प्राय: छोटे बड़े सभी एक सिरेसे मृत्यु-समय महोत्सव मना रहे हैं। मृत्यु उनके सर पर नाच रही है, पृथ्वी उनके पांवोंके नीचेसे खिसकी जारही है। प्रलयके थपेड़े चप्पत मारकर बतला रहे हैं कि रणचण्डीका तांडव-नृत्य प्रारम्भ होगया है। उसका घातक प्रभाव आँधीकी तरह संसारमें फैल गया है। संसारके विनाशकी चिन्ता और अपने अस्तित्व मिट जानेकी आशंका दूरदर्शी मनुष्योंके कलेजोंको खुरच-खुरच कर खाए जारही है। पृथ्वीके गर्भमें जो विस्फोट भर गया है वह न जाने कब फूट निकले और इस दीवानी दुनिया को अपने उदर-गह्वरमें छुपा ले। एक क्षण भरमें क्या होनेवाला है— यह कह सकनेकी आज राजनीति के किसी भी पंडितमें सामर्थ्य नहीं है। संसार समुद्र में जो विषैली गैस भर गई है वह उसे नष्ट करनेमें कालसे भी अधिक उतावली है।

किन्तु, जैनसमाजका इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं है। वह उसी तरहसे अपने राग रङ्गमें मस्त है दुख, चिन्ता, पीड़ा आदिके होते हुए भी आनन्द-विभोर रहना, मुसीबतोंका पहाड़ टूट पड़नेपर भी मुस्कराना नमुष्यके वीरत्व साहस और धैर्यके चिह्न हैं। पर जब यही क्लेश, दुख, चिन्ता आदि दूसरेको पीड़ित कर रहे हों, तब उनका निवारण न करके अथवा समवेदना प्रकट न करके आनन्द रत रहना मनुष्यताका द्योतक नहीं। गाना अच्छी चीज है, पर पड़ौसमें आग लगी होनेपर भी सितार बजाते रहना, उसके बुझानेका प्रयत्न न करना आनन्दके बजाय क्लेशको निमन्त्रण देना है। जहाजका कप्तान अपनी मृत्युका आलिंगन मुस्कराते हुए कर सकता है, पर यात्रियोंकी मृत्युकी संभावनापर उसका आनन्द विलीन हो जाता है और कर्तव्य सजग हो उठता है।

हम भी इस संसार-समुद्रमें जैनसमाज-रूपी जहाजमें यात्रा कर रहे हैं। जब संसार सागर विक्षुब्ध हो उठा है और उसकी प्रलयङ्कारी लहरें अपने अन्तस्थलमें छुपानेके लिये जीभ निकाले हुए दौड़ी आरही हैं तब हमारा निश्चेष्ट बैठे रहना, रागरङ्गमें मस्त रहना, निश्चय ही आत्मघातसे भी अधिक जघन्य पाप है।

पोलेण्ड और फिनलैंडका वही हश्र हुआ जो निर्बल राष्ट्रों और अल्पसङ्ख्यक जातियोंका होता है। इस घटनासे शंकित आज कमजोर और असहाय राष्ट्र मृत्युवेदनासे छटपटा रहे हैं। निर्बल राष्ट्र ही क्यों? वे सबल राष्ट्र भी—जिनकी तलवारोंके चमकनेपर बिजली कौन्दती है, जिनके सायेके साथ साथ हाथ बान्धे हुए विजय चलती है, जिनके इशारे पर मृत्यु नाचती है—आज उसी सतृष्ण दृष्टिसे अपने सहायकोंकी ओर देख रहे हैं। जिस तरह डाकुओंसे घिरा हुआ काफिला (यात्री दल)। क्योंकि उनके सामने भी अस्तित्त्व मिट जानेकी सम्भावना घात लगाये हुए खड़ी है। इस प्रलयंकारी युगमें जो राष्ट्र या समाज तनिक भी असावधान रहेगा, वह निश्चय ही ओन्धे मुँह पतनके गहरे कूपमें गिरेगा। अत: जैन समाजको ऐसी परिस्थितिमें अत्यन्त सचेत और कर्तव्यशील रहनेकी आवश्यकता है।

३-सम्प्रदायवादका अन्त—

जबसे हमारा भारत स्वतन्त्र हुआ है, उसे अनेक विषम परिस्थितियोंने घेर लिया है। पाकिस्तानी, रियासती और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंके हल करनेमें तो वह चिन्तित है ही, अपने आन्तरिक मामलोंसे वह और भी परेशान है। जिन रूढ़िवादियों, प्रगतिविरोधियों, पोंगापन्थियों, जी हूजूरों, पूँजीपतियों आदि ने स्वतन्त्रता प्राप्तिमें विघ्न डाले और हमारे मार्गमें पग-पग पर कांटे बिछाये, वही आज सम्प्रदायवाद, प्रान्तवाद और जातीयतावादोंके झण्डे लेकर खड़े हो गये हैं। जिन भलेमानुषों (?) ने गुलामीकी जंजीर में जकड़ने वाली ब्रिटिशसत्ताको दृढ़ बनानेके लिये लाखों नवयुवक फौजमें भर्ती कराके कटा डाले, असंख्य पशुधन विध्वंस करा डाला और यहांका अनाज बाहर भेजकर लाखों नर नारियों और बालक बालिकाओंको भूखे मार डाला, वही आज "धर्म डूबा धर्म डूबा" का नारा बुलन्द करके सम्प्रदायवादका बवन्डर उठा रहे हैं।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

ऐसेही स्वार्थी धर्मभेषिओंको बहकाकर सम्प्रदायवादके नाम पर शासनसत्ता अपने हाथमें लेनेका अधम प्रयत्न कर रहे हैं। प्रान्तवादका यह हाल है कि १-२ प्रान्तोंको छोड़कर प्राय: सभी प्रान्त वाले एक-दूसरेको घृणा करने लगे हैं। प्रान्तीय सुविधाएँ और नोकरियां अन्य प्रान्तीय न लेने पाएँ। इसके लिये प्रयत्न प्रारम्भ हो गये हैं। जातीयवादका यह हाल है कि कुछ लोग महाराष्ट्र साम्राज्यका दु:स्वप्न देख रहे हैं। कुछ जाटिस्तान, कुछ सिक्खस्तान और कुछ अछूतस्तान बनानेके काल्पनिक घोड़े दौड़ा रहे हैं। हर कोई अपनी डेढ़ चावलकी खिचड़ी अलग-अलग पका रहा है। परिणाम इसका यह होरहा है कि भारत स्वतंन्त्र होकर उत्तरोत्तर उन्नत और बलवान होनेके बजाय अवनत और निर्बल होता जा रहा है।

सम्प्रदायवादके नामपर भारतमें जो इन दिनों नरमेधयज्ञ हुआ है—यदि उसके नरकङ्कालोंको एकत्र करके हिमालयके समक्ष रखा जाय तो वह भी अपनी हीनतापर रो उठेगा। इस सम्प्रदायवादके विषाक्त कीटाणु अब इतने रक्त पिपासु हो गये हैं कि अन्य सम्प्रदायोंका रक्त न मिलनेपर अपने ही सम्प्रदायका रक्त पीने लगे हैं। महात्मा गान्धी इसी घिनोने सम्प्रदायकी वेदीपर बलि चढ़ा दिये गये हैं। और न जाने कितने नररत्न श्रेष्ठोंकी तालिका अभी बाक़ी हैं।

"घोड़ेके नाल जड़ती देखकर मेड़कीने भी नाल जड़वाई" या नहीं; परन्तु इन विषैले कीटाणुओंका घातक प्रभाव हमारी समाजके भी कतिपय बन्धुओं-पर हुआ है। जिसके कारण वे तो नष्ट होंगे ही, पर मालूम होता है कि जिस नांवमें वे बैठे हैं उसे भी ले डूबनेका इरादा रखते है।

वे तो डूबेंगे सनम हमको भी ले डूबगे।

सम्प्रदायवाद जब असाध्य हो जाता है तब रोगी सन्निपातसे पीड़ित धर्मोन्मादावस्थामें बहकने लगता है—"हमारा धर्म भिन्न, संस्कृति भिन्न, आचार भिन्न, व्यवहार भिन्न, कानून भिन्न और अधिकार भिन्न हैं। हम सबसे भिन्न विशेष अधिकारोंके पात्र हैं।"

हम पूछते हैं जब पागलोंको पागलखाने और संक्रामक रोगियोंको तुरन्त एकान्त स्थानमें भेज दिया जाता है, फिर इन सांघातिक धर्मोन्मादकों, मज़हबी दीवानों और सम्प्रदायवादियोंको कारावास क्यों नहीं भेजा जाता? जो मानव अपने देश, धर्म, समाज और वंशके लिये अभिशाप होने जा रहा है, उसकी क्यों नहीं शीघ्रसे शीघ्र चिकित्सा कराई जाती? जिन्हाकी धर्मान्धताके कारण मुसलमानोंकी कैसी दुर्गति हुई गोडसेके कारण हिन्दुसभा, राष्ट्रीयसङ्घ, महाराष्ट्रप्रान्त, महाराष्ट्रीय ब्राह्मणोंको कितना कलङ्कित होना पड़ा. उनपर कैसी आपदाएँ आईं और ईसाके घातक यहूदी आज किस जघन्य दृष्टिसे देखे जाते हैं, बतानेकी आवश्यकता नहीं। अत: हमें अपनी समाजमें सम्प्रदायवादका प्रवेश प्राणपणसे रोकना चाहिये। हम भगवान महावीरके अहिंसा, सत्य, अपरिग्रहत्व और विश्वबन्धुत्वके प्रसारके लिये सम्प्रदायवादके दल-दलमें न फंसकर अनेकान्त-ध्वजा फहरायेंगे। आज अनेकान्ती बन्धुओंको सांख्यवाद, शैववाद, नैयायिकवाद, चार्वाकवादसे लोहा नहीं लेना है। उसे विश्वमें फैले, सम्प्रदायवाद, जातीयवाद, प्रान्तवाद, गुरुडमवाद, परिग्रहवादसे संघर्ष करना है।

४-हिन्दू और जैन--

हमारी समाजके ख्यातिप्राप्त विद्वान डाक्टरहीरालालजीका उक्त शीर्षकसे जैनपत्रोंमें लेख प्रकाशित हुआ है! जैन अपनेको हिन्दू कहें या नहीं? यदि नहीं कहें तो हिंन्दुओंको मिलने वाली सुविधाओंसे सम्भवतया जैन बंचित कर दिये जाएँगे। और बहिष्कारकी भी सम्भावना है। यही इस लेखका सार है। जो भय और चिन्ता डाक्टर साहबको है, वही चिन्ता और भय प्राय: सभी समाज-हितैषियोंको खुरच खुरचकर खाये जा रहा है। और अब वह समय आगया है कि हम इस ओर अब अधिक उपेक्षा नहीं कर सकते। शिकारीके भयसे आंख बन्द कर लेने या रेतेमें गर्दन छिपा लेनेसे विपत्ति कम न होकर बढेगी ही।

जिस सिन्धु नदीके कारण भारत हिन्द कहलाया,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह तो भारतमें न रहकर पाकिस्तानमें चलीगई। और अपने भारतकी पराधीनताको अमिट निशानी "हिंन्दू" यहां छोड़ गई। हिंन्दू परतंत्र पद दलित और विजित भारतका बलात् नाम करण है और मुस्लिम शब्द कोषोंमें हिंन्दूका अर्थ गुलाम या काफ़िर किया गया है। अत: भारतका उपयुक्त प्राचीन नाम तो भारत ही श्रेष्ठ है। और इसके निवासी सभी भारतीय हैं। जैन भी भारतीय जैन हैं। परन्तु हिन्दु शब्द रूढ होजाने से यदि भारतका नाम हिन्द भी रहता है तो यहांके सभी निवासी हिन्दू या हिन्दी है चाहे वे आर्य, जैन, बौद्ध, सिक्ख, मुस्लिम, ईसाई पारसी कोई भी क्यों न हों। हां मनुष्य आर्य हिन्दू जैन हिन्दू या मुस्लिम हिन्दू लिखनेका अधिकारी है।

किन्तु हिन्दू शब्द भी एकवर्ग विशेषके लिये रूढ़ होगया है, जिसमें इतर धर्म पर आस्था रखने वालों केलिये स्थान नहीं है। इसीलिये हर राष्ट्रीय विचारका मनुष्य अपनेको हिन्दू न कर हिन्दी कहता है। हालांकि दोनोंका अर्थ भारत निवासी ही है। परन्तु प्रचलित रूढ़िके अनुसार हिन्दू एक सम्प्रदायवादका और हिन्दी भारतीयताका द्योतक बन गया है। और आगे चल कर भाषाके मामलेमें हिन्दी शब्दभी समस्त भारतीयों की भाषाका द्योतक न होकर नागरीलिपि का रूपक हो गया है। महात्मागांधी भारतीयताके नाते तो हिन्दी थे; परन्तु भाषाके प्रश्नपर वे हिन्दीके समर्थक न होकर हिन्दुस्तानीके समर्थक थे। जो हिन्दी शब्द सभी सम्प्रदायवाले भारतीयोंके एकीकरणके लिये उपयुक्त समझा गया, वही हिन्दी शब्द एक विशेष अर्थमें रूढ़ हो जानेके कारण सभी भारतीयोंकी मिली जुली भाषा केलिये उपयुक्त नहीं समझ कर और उसके एवज "हिन्दुस्तानी" शब्दका प्रचलन किया गया। और अब इसका भी एक रूढ अर्थ हो गया है, अर्थात हिन्दुस्तानी वह खिचड़ी भाषा जिसे कोई भी अपनी न समझे। लावारिस वर्णशंकरी भाषा।

कहनेका तात्पर्य है कि जैन, जैन हैं। हम भारत के आदि निवासी हैं आर्य-अनार्य कौन बाहरसे आया और कौन यहांका मूल निवासी है, हमें इस पचड़ेमें जानेकी आवश्यकता नहीं। पर हमारे मूलपुरुष यहीं जन्में, यहीं निर्वाणको प्राप्त हुए हैं। भारतको उन्नत बनानेमें हमने भरसक और अनथक कार्य किये हैं। अत: हमारे देशका नाम यदि भारत ही रहता हैं तो हम भारतीय जैन हैं और यदि हिन्द रहता है तो हम हिन्दी या हिन्दू जैन हैं। हम अपने लिये न कोई विशेष अधिकार चाहते हैं न अपने लिये कोई नये कानूनका सृजन चाहते है। हमने सबके हितमें अपना हित और दुखमें दुख समझा है और आगे भी समझेंगे। भगवान् महावीरके अहिंसा, सत्य और अपरिग्रहत्व और विश्वबन्धुत्वकी अमृत वाणीको साम्प्रदायिक पोखरमें डालकर अपवित्र नहीं होने देंगे राष्ट्रकी भलाईमें हम हिन्दू हैं, हिन्दी हैं और भारतीय हैं; किन्तु यदि हिन्दू शब्द किसी विशेष सम्प्रदाय-वादका पोषक है किसी ख़ास वर्गवादका द्योतक है, और प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोंको कुचलकर नाज़ी या फासिस्टवाद जैसा सम्प्रदायवाद या जातिवादका परिचायक है तो जैन केवल मनुष्य हैं। सम्प्रदाय-वाद या साम्राज्यवादका एक महल बनानेमें वे कभी सहायक न होंगे। चाहे सभी जैन राष्ट्रपिता बापूकी तरह बलि चढ़ा दिये जाएँ।

५—श्रेष्ठ नागरिक——

सम्प्रदायवादके साथ-साथ जैनोंको राजनैतिक सङ्घर्षोंसे भी बचना होगा। कभी शासनसत्ता गांधी-वादियों, कभी समाजवादियों, कभी कम्यूनिस्टों और कभी किसीके हाथमें होगी। शासनसत्ता हस्तांतरित करनेके लिये व्यापक षडयन्त्र और नर-हत्याएँ भी होंगी। शासकदल विरोधी पक्षको कुचलेगा, विरोधी पक्ष विजयी दलको चैनसे सांस न लेने देगा। ऐसी स्थितिमें अल्पसंख्यक जैनसमाजका कर्तव्य है कि वह सामूहिक रूपमें किसी दल विशेषके साथ सम्बन्ध न जोड़े। हां व्यक्तिगत रूपसे अपनी इच्छानुसार हर व्यक्तिको भिन्न भिन्न कार्य क्षेत्रोंमें कार्य करनेका अधिकार है। यह भावना कि हम जैन हैं इसलिये हमें इतनी सीटें और इतनी नौकरियां मिलनी चाहिए" हमारे विकासमें बाधक होगा। हम अपनेको इस

योग्य बनायें कि हर उपयुक्त स्थानपर हमारी उपादेयता प्रकट हो। "योग्य व्यक्तियोंके स्थानपर भी हम अयोग्योंको इसलिये लिया जाय कि हम अमुक वर्गसे सम्बन्धित हैं" यह नारा मुसलमानों, सिक्खों, अछूतोंका रहा है। हम इस नारेको हरगिज़ न दुहराएँगे। हमें तो अपनेको इस योग्य बनाना है कि विरोधी पक्ष इच्छा न होते हुए भी अपने लिये निर्वाचित करें। षण्मुखम्चेट्टी कांग्रेसके प्रबल विरोधी होते हुए भी केवल योग्यताके बलपर काँग्रेसी सरकारमें सम्मिलित हुए। उसी तरह जैनोंको सम्प्रदायके नामपर नहीं, अपनी योग्यता, वीरता, धीरता, को लेकर आगे बढ़ना है। हम जैन अपनेको इतना श्रेष्ठ नागरिक बनाएँ कि जैनत्व ही श्रेष्ठताका परिचायक हो जाय। जिस तरह विशिष्ट गुण या अवगुणके कारण बहुत सी जातियां ख्याति पाती हैं। उसी तरह हमारे लोकोत्तर गुणोंसे जैनत्व इतनी प्रसिद्धि पाजाय कि केवल जैन शब्दही हमारी योग्यता प्रामाणिकता, सौजन्यता, भद्रताका प्रतीक बन जाय।

६—पाँचवें सवार—

अपनी समाजमें कुछ ऐसे चलते हुए लोग भी हैं, जिनका न राजनीतिमें प्रवेश है और न देशकेलिए ही उन्होंने कभी कोई कष्ट सहन किया। अपितु सदैव प्रगतिशील कार्योंमें विघ्न स्वरूप बने रहे हैं। दस्सा पूजनाधिकार, अन्तर्जातीय विवाह, शास्त्रोद्धार, नुक्ता प्रथाबन्दी बाल-वृद्ध विवाह आदि आन्दोलनोंके विरोधी रहे हैं। हर समाजोपयोगी कार्योंमें रोड़े अटकाते रहे हैं। सुधारकों और देशभक्तोंको अधर्मी कहते रहे हैं, उनका बहिष्कार करते रहे हैं वही आज इन लौगोंके हाथमें सत्ता आते देख खुशामदी लेख लिख रहे हैं, पत्रोंके विशेषांक केवल उनके लेख पाने के लोभसे निकाल रहे हैं, और जैन स्वत्व अधिकार के नामपर मनमाना प्रलाप करके समाजके मस्तकको नीचा कर रहे हैं। समाजके किए गये बहुमूल्य बलिदानका मोल तोल कर रहे हैं।

जो जैन अपनी योग्यता और लोकसेवी कार्योंके बलपर अधिकसे अधिक जाने चाहियें। वहां ये अपनी घातक नीतिके कारण केवल एक सीटकेलिये पृथ्वी आकाश एक कर चुके हैं। अभी तक यह लोग विनेकावार और दस्से जैनोंके लिये पूजा पाठ रोके हुए थे। चाहे जिसका बहिष्कार करके दर्शन-पूजा बन्द कर देते थे। अब हरिजनोंकेलिये मन्दिर खुलते देख इन्हें भय हुआ कि जब हरिजन ही मंदिरों में प्रवेश पा जाएंगे, तब इन अभागे दस्सोंको कैसे रोका जायगा? अत: चट एक चाल चली और "जैन हिन्दू नहीं हैं" यह लिखकर उस क़ानूनके अन्तर्गत जैन उपासना-गृहोंको नहीं आने दिया। पर इन दयावतारोंने यह नहीं सोचा कि जैन यदि बहुसंख्यक जातिके साथ क़ानूनमें नहीं बंधते हैं तो उन्हें बहुसंख्यक जातिको मिलने वाली सारी सुविधाओंसे वञ्चित होना पड़ेगा। और यह नीति आत्म-घातक सिद्ध होगी। हिंदुओंसे पृथक् समझने वाली मुसलमान जातिका आज भारतमें क्या हश्र हुआ? वे अपने ही वतनमें बदसे बदतर हो गये। उनकी मस्जिदें वीरान होगईं, व्यापार चौपट होगये, और घरसे निकलना दुश्वार होगया; यहां तक कि बाइज्ज़त मरना भी उनके लिये मुहाल होगया। ऐंग्लोइण्डियन्सका जिनका ख़ुदा इंगलेण्डमें रहता था, आज भारतमें क्या व्यक्तित्व रह गया है? तब क्या जैन समाजके ये जिन्हा जैनोंको भी उसी तरह बर्बाद करना चाहते हैं। उस जिन्हामें सूझ थी, बुद्धि थी, अक्ल थी, कानूनकी अपार जानकारी थी। मुसलमानोंके लिये उसके पास धन था और समय था। जिसने अपने प्रलयङ्कारी आन्दोलनसे पर्वतोंको भी विचलित कर दिया था। वाक्जालमें अच्छे-अच्छे राजनीतिज्ञोंको फँसा लिया था, फिर भी वह मुसलमानोंका अनिष्टकारक ही सिद्ध हुआ। फिर जैन समाजके ये जिन्हा जिन्हें अक्ल कभी मांगे न मिली, जैन स्वत्वके नामपर वायवेला मचाते हैं तो यह समझनेमें किसी समझदारको देर न लगेगी कि जैन-समाजकी नैया जिस तूफानसे गुज़र रही है, उसे चकनाचूर करने और डुबानेमें कसर न छोड़ेंगे।

—गोयलीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीरसेवामन्दिरको सहायता

(गत १२ वीं किरणके बाद)

२५) ला० होरीलाल नेमचन्दजी जैन, सरसावा (चि० प्रेमचन्दके विवाहकी खुशीमें निकाले हुए दानमेंसे)

१०) ला० मेहरचन्द शीतलप्रसादजी जैन, अब्दुल्लापुर जिला अम्बाला (चि० सुपुत्रीके विवाहोपलक्षकी खुशीमें)

५) मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजीकी ७१ वीं वर्षगांठ के अवसरपर निकाले हुए दानमें से प्राप्त

४०)

अनेकान्तको सहायता---

२५) ला० उदयराम जिनेश्वरदासजी सहारनपुर की ओरसे ३ जैन संस्थाओं और दो जैनेतरर विद्वानोंको फ्री भिजवानेके लिये।

१०) ला० होरीलाल नेमचन्दजी (चि० प्रेमचन्द के विवाहकी खुशीमें निकाले हुए दानमें से)

११) बा० रामस्वरूपजी मुरादाबादके (चि० पुत्र की शादीकी खुशीमें निकाले दानमें से)

५) मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जीकी ७१ वीं वर्षगांठके अवसरपर निकाले दानमें से प्राप्त

५१)

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रकाशन

१. **महाबन्ध**—(महाधवल सिद्धान्त शास्त्र) प्रथम भाग। हिन्दी टीका सहित मूल्य १२)

२. **करलक्खण**—(सामुद्रिक शास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित। हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ। सम्पादक—प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए०, अमरावती। मूल्य १)

३. **मदनपराज्य**—कवि नागदेव विरचित (मूल संस्कृत) भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावनासहित। जिनदेवके कामके पराजयका सरस रूपक। सम्पादक और अनुवादक—पं० राजकुमारजी सा० मूल्य ८)

४. **जैनशासन**—जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करने वाली सुन्दर रचना। हिन्दू विश्वविद्यालयके जैन रिलीजनके एफ० ए० के पाठ्यक्रममें निर्धारित। कवर पर महावीरस्वामी का तिरंगा चित्र मूल्य ४।–)

५. **हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास**—हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास तथा परिचय। २।।।)

६. **आधुनिक जैन कवि**—वर्तमान कवियोंका कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ। मूल्य ३।।।)

७. **मुक्ति-दूत**—अञ्जना-पवनञ्जयका पुण्यचरित्र (पौराणिक रौमाँस) मूल्य ४।।।)

८. **दो हजार वर्षकी पुरानी कहानियां**—(६४ जैन कहानियाँ) व्याख्यान तथा प्रवचनोंमें उदाहरण देनेयोग्य ३)

९. **पथचिह्न**—(हिन्दी साहित्यकी अनुपम पुस्तक) स्मृति रेखाएँ और निबन्ध। मूल्य २)

१०. **पाश्चात्य तर्कशास्त्र**—(पहला भाग) एफ० ए० के लाजिकके पाठ्यक्रमकी पुस्तक। लेखक—भिक्षु जगदीशजी काश्यप, एम० ए०, पालि-अध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी। पृष्ठ ३८४। मूल्य ४।।)

११. **कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न**—२)।

१२. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्र ग्रन्थसूची**-(हिन्दी) मूडबिद्रि के जैनमठ, जैनभवन, सिद्धान्तवसदि तथा अन्य ग्रंथ भण्डार कारकल और अलियूरके अलभ्य ताड़पत्रीय ग्रन्थोंक सविवरण परिचय। प्रत्येक मन्दिरमें तथा शास्त्रभंडारमें विराजमान करनेयोग्य। १०)

वीर सेवामन्दिरके सब प्रकाशन यहांपर मिलते है

—प्रचारार्थ पुस्तक मंगानेवालोंको विशेष सुविधा।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्डरोड, बनारस।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. A—731.

वीरसेवामन्दिरके नये प्रकाशन

१ अनित्यभावना— मुख्तार श्रीजुगलकिशोरके हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ-सहित। इष्टवियोगादिके कारण कैसा ही शोकसन्तप्त हृदय क्यों न हो, इसको एक बार पढ़ लेनेसे बड़ी ही शान्तताको प्राप्त हो जाता है। इसके पाठसे उदासीनता तथा खेद दूर होकर चित्तमें प्रसन्नता और सरसता आजाती है। सर्वत्र प्रचारके योग्य है। मू० ।)

२ आचार्य प्रभाचन्द्रका तत्त्वार्थसूत्र— नया प्राप्त संक्षिप्त सूत्रग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोरकी सानुवाद व्याख्या-सहित। मू० ।)

३ सत्साधु-स्मरण-मङ्गलपाठ— मुख्तार श्रीजुगलकिशोरकी अनेक प्राचीन पद्योंको लेकर नई योजना, सुन्दर हृदयग्राही अनुवादादि-सहित। इसमें श्रीवीर-वर्द्धमान और उनके बादके, जिनसेनाचार्य पर्यन्त, २१ महान् आचार्योंके अनेकों आचार्यों तथां विद्वानों द्वारा किये गये महत्वके १३६ पुण्य स्मरणोंका संग्रह है और शुरूमें १ लोकमङ्गल-कामना, २ नित्यकी आत्म-प्रार्थना, ३ साधुवेशनिदर्शक-जिनस्तुति, ४ परमसाधुमुखमुद्रा और ५ सत्साधुवन्दन नामके पाँच प्रकरण हैं। पुस्तक पढ़ते समय बड़े ही सुन्दर पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं और साथ ही आचार्योंका कितना ही इतिहास सामने आजाता है। नित्य पाठ करने योग्य है। मू० ।।)

४ अध्यात्म-कमल-मार्तण्ड— यह पञ्चाध्यायी तथा लाटी संहिता आदि ग्रन्थोंके कर्ता कविवर राजमल्लकी अपूर्व रचना है। इसमें अध्यात्मसमुद्रको कूजेमें बन्द किया गया है। साथमें न्यायाचार्य पं० दरबारीलाल कोठिया और पण्डित परमानन्दजी शास्त्रीका सुन्दर अनुवाद, विस्तृत विषयसूची तथा मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजीकी लगभग ८० पेजकी महत्वपूर्ण प्रस्तावना है। बड़ा ही उपयोगी ग्रन्थ है। मू० १।।)

५ उमास्वामि-श्रावकाचार-परीक्षा — मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जीकी ग्रंथपरीक्षाओं का प्रथम अंश, ग्रंथ-परीक्षाओं के इतिहास को लिये हुये १४ पेजकी नई प्रस्तावना-सहित। मू० ।)

६ न्याय-दीपिका (महत्वका नया संस्करण) न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठियाद्वारा सम्पादित और अनुवादित न्यायदीपिकाका यह विशिष्ट सँस्करण अपनी खास विशेषता रखता है। अब तक प्रकाशित संस्करणोंमें जो अशुद्धियाँ चली आरही थीं उनके प्राचीन प्रतियोंपरसे संशोधनको लिये हुए यह संस्करण मूलग्रंथ और उनके हिन्दी अनुवादके साथ प्राक्कथन, सम्पादकीय १०१ पृष्ठकी विस्तृत प्रस्तावना, विषयसूची और कोई ८ परिशिष्टोंसे संकलित है, साथमें सम्पादक-द्वारा नवनिर्मित 'प्रकाशाख्य' नामका एक संस्कृत टिप्पण लगा हुआ है, जो ग्रन्थगत कठिन शब्दों तथा विषयोंका खुलासा करता हुआ विद्यार्थियों तथा कितने ही विद्वानोंके कामकी चीज है। लगभग ४०० पृष्ठोंके इस सजिल्द बृहत्संस्करणका लागत मूल्य ५) रु० है। कागजकी कमीके कारण थोड़ी ही प्रतियां छपी हैं। अतः इच्छुकोंको शीघ्र ही मंगा लेना चाहिये।

७ विवाह-समुद्देश्य— लेखक पं० जुगलकिशोर मुख्तार, हालमें प्रकाशित चतुर्थ संस्करण।

यह पुस्तक हिन्दी-साहित्यमें अपने ढंगकी एक ही चीज है। इसमें विवाह जैसे महत्वपूर्ण विषयका बड़ा ही मार्मिक और तात्त्विक विवेचन किया गया है, अनेक विरोधी विधि-विधानों एवं विचार-प्रवृत्तियोंसे उत्पन्न हुई विवाहकी कठिन और जटिल समस्याओंको बड़ी युक्तिके साथ दृष्टिके स्पष्टीकरण-द्वारा सुलझाया गया है और इस तरह उनमें दृष्टिविरोधका परिहार किया गया है। विवाह क्यों किया जाता है? धर्मसे, समाजसे और गृहस्थाश्रमसे उसका क्या सम्बन्ध है? वह कब किया जाना चाहिये? उसके लिये वर्ण और जातिका क्या नियम हो सकता है? विवाह न करनेसे क्या कुछ हानि-लाभ होता है? इत्यादि बातोंका इस पुस्तकका बड़ा ही युक्ति पुरस्सर एवं हृदयग्राही वर्णन है। आर्ट पेपर पर छपी है। विवाहोंके अवसरपर वितरण करने योग्य है। मू० ।।)

प्रकाशन विभाग—

वीरसेवामन्दिर, सरसावा (सहारनपुर)

प्रकाशक—पं० परमानन्दजैन शास्त्री भारतीयज्ञानपीठ काशीके लिये अजितकुमारजैन शास्त्री द्वारा अकलङ्कप्रेस सहारनपुरमें मुद्रित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org